

इकाई – 1 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों की विधि व लाभ

नाड़ी – शोधन, सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी व शीतली प्राणायाम

1.1 – प्रस्तावना

1.2 – उद्देश्य

1.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों की विधि व लाभ

1.3.1 – नाड़ीशोधन – विधि, लाभ

1.3.2 – सूर्यभेदन – विधि, लाभ

1.3.3 – उज्जायी – विधि, लाभ

1.3.4 – सीत्कारी – विधि, लाभ

1.3.5 – शीतली – विधि, लाभ

1.4 – सारांश

1.5 – शब्दावली

1.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 – निबंधात्मक प्रश्न

1.1 – प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही हठयोग योग का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष माना जाता रहा है। इस योग की परम्परा के विषय पर दृष्टिपात करे तो सर्वप्रथम इसकी शिक्षा भगवान शिव ने माता पार्वती को दी। उसके बाद नाथ सम्प्रदाय ने इसको विस्तारित किया जिनमें गोरक्षनाथ तथा मत्स्येन्द्र नाथ अग्रणी हैं। हठयोग में जहाँ एक ओर षट्कर्म को महत्त्वपूर्ण माना गया है, तो वहीं दूसरी ओर प्राणायाम की भी विस्तार पूर्वक चर्चा की गयी है। इसमें प्राणायाम के आठ प्रकार बताये गये हैं। जिसे एक विशेष नाम **अष्टकुम्भक** कहा गया है।

प्रिय पाठको प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित अष्टकुम्भको का वर्णन कर सकेंगे, तथा उनके बारे में जान सकेंगे। प्रत्येक कुम्भक को प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी विधि को भली – भाँति सिखना होगा और फिर आरम्भ करना होगा। इसमें कुम्भक के कुछ प्रकार ऐसे भी हैं जिससे नये साधक को हानि भी पहुँच सकती है। प्रिय विद्यार्थियों इसलिए आपको विशेष मार्ग दर्शन सभी अभ्यास सिखने होंगे। उसके बाद ही अभ्यास प्रारम्भ करने होंगे।

1.2 उद्देश्य

- हठयोग प्रदीपिका या हठप्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों (अभ्यासों) का अध्ययन कर सकेंगे।
- प्राणायाम को करते समय क्या – क्या सावधानी रखनी चाहिए उससे परिचित हो सकेंगे।
- प्राणायाम के विभिन्न लाभ को प्राप्त कर सकेंगे।
- अष्टकुम्भको का साधना की दृष्टि से क्या महत्व है, इस तथ्य को भी समझ सकेंगे।

1.3 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों की विधि व लाभ

हठप्रदीपिका में प्राणायामों को अष्टकुम्भक के नाम से परिभाषित किया गया है। इस अष्ट कुम्भकों का शारीरिक स्तर पर क्या महत्व है, इस पर भी उल्लेख किया गया है। अष्ट कुम्भक का वर्णन निम्नलिखित है।

1.3.1 – नाडीशोधन प्राणायाम – हठप्रदीपिका के अनुसार नाडी शोधन की विधि –
बद्धपद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत्।
धारयित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्येण रेचयेत्॥

– 2/7 हठप्रदीपिका

अर्थात् पद्मासन में बैठकर साधक को चन्द्र नाडी (बायें नथुने) से श्वास अन्दर लेना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार रोककर सूर्य नाडी (दायें नथुने) से श्वास छोड़ना चाहिए। स्वात्माराम सूरि जी ने पुनः अगले सूत्र में पुनः इस प्राणायाम का विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया है –

प्राणं चेदिडया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यया रेचयेत्।
पीत्वा पिङ्गलया समीरणयथो बद्ध्वा व्यजेद्दामया॥
सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाभ्यासं सदा तन्वतां।
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः॥

– 2/10 हठप्रदीपिका

अर्थात् यदि प्राणवायु को इड़ा (बायें नथुने) से पूरित करे तो उसे नियन्त्रित (कुम्भक) करके पुनः दूसरे से छोड़ देना चाहिए, और बाद में पिंगला (दायें नथुने) से वायु अन्दर लेकर, कुम्भक कर, बायें से छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार बायें और दाहिने नथुने से लगातार प्राणायाम का अभ्यास करने से योगसाधकों की नाडी समूह तीन मास से कुछ अधिक समय में निर्मल हो जाते हैं।

हठप्रदीपिका में इस प्राणायाम को कोई विशेष नाम नहीं दिया गया है। किन्तु वर्तमान समय में इसे अनुलोम – विलोम प्राणायाम के नाम से जाना जाता है। किन्तु अनुलोम – विलोम सामान्य गति से श्वास को अन्दर और बाहर किया जाता है, तथा नाडी शोधन प्राणायाम में श्वसन प्रक्रिया को पूरक और रेचक के अलावा अर्न्तकुम्भक और बाह्ययी कुम्भक का भी प्रयोग किया जाता है।

वर्तमान प्रचलित नाडी शोधन प्राणायाम की विधि –: सर्वप्रथम किसी ध्यानात्मक आसन (पद्मासन, सुखासन, स्वास्तिकासन) में कमर और गर्दन को सीधा रखते हुए बैठते हैं। अब सर्वप्रथम बाएँ नासिका से पूरक करते हैं और थोड़ी देर अन्तः कुम्भक (अन्दर रोकना) लगा देते हैं फिर धीरे – धीरे दायी नासिका से रेचक करते हैं। फिर दायी नासिका से पूरक करते हैं, और फिर कुम्भक करते हैं। उसके बाद बायी नासिका से रेचक कर देते हैं। नाडी शोधन की यह प्रक्रिया अन्तःकुम्भक के द्वारा बतायी गयी है।

प्रिय विद्यार्थियों इस प्रक्रिया को अन्तःकुम्भक और बाह्ययी कुम्भक दोनों कुम्भकों के द्वारा भी किया जाता है। किन्तु जब अन्तःकुम्भक की साधना में पूर्णता प्राप्त हो जाए उसके बाद ही दोनों कुम्भकों का प्रयोग उचित है अन्यथा हानि हो सकती है। अतः प्राणायाम की किसी भी विधि को पुस्तक से पढ़कर ना करें। उचित मार्गदर्शन में प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए।

लाभ –

- नाड़ी शोधन प्राणायाम के नियमित अभ्यास से शरीर में दिव्य आभा आने लगती है।
- मस्तिष्क में आने वाले नकारात्मक विचार धीरे – धीरे कम होने लगते हैं।
- अनिद्रा तथा तनाव धीरे – धीरे क्षीण होने लगता है।
- नाड़ियों की शुद्धि होने से कुण्डलिनी जागरण होता है।

1.3.2 – सूर्यभेदन प्राणायाम –

आसने सखनदे योगी बद्ध्वा चैवासनं ततः।

दक्षनाड्या समाकृष्य बहिस्थं पवनं शनैः॥ 2/48॥

आकेशादानखाग्राच्च निरोधावधि कुम्भयेत्।

ततः शनैः सव्यनाड्या रेचयेत् पवनं शनैः॥ 2/49॥

अर्थात् योगाभ्यासी कोई भी सुखदायक आसन बिछाकर, उस पर आसन लगाकर, दाहिने नथुने से बाहरी वायु को धीरे – धीरे अन्दर खींचकर, उसे जब तक हो सके अधिकाधिक निरोध करे (श्वास को रोके), और फिर बाएँ नथुने से धीरे – धीरे श्वास को छोड़े।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- कमर गर्दन को सीधा रखते हुए ध्यानात्मक आसन में बैठते हैं।
- दायी नासिका से श्वास को अन्दर ले और थोड़ी देर के लिए कुम्भक करें।
- फिर धीरे – धीरे श्वास को बायी नासिका से रेचक करें।
- तत्पश्चात् इसी तरह विधि को पुनः दोहराए, यही सूर्यभेदन प्राणायाम की विधि है।

लाभ –

- शीतऋतु में नियमित सूर्यभेदन प्राणायाम के अभ्यास से ठण्ड का अनुभव नहीं होता है।
- सूर्यभेदन प्राणायाम करने से कृमि भी नष्ट होने लगते हैं।
- निम्न रक्तचाप वाले व्यक्ति के लिए लाभकारी प्राणायाम है।
- वात तथा कफ दोष को सामान्य करता है तथा शरीर में ऊर्जा का संचार करता है।
- अस्थमा के रोगी को इस प्राणायाम को करने से लाभ पहुँचता है।

1.3.3 – उज्जायी प्राणायाम –

मुखं सुयम्य नाडीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः।

यथा लगति कण्ठातु हृदयावधि सस्वनम्॥ 2/51॥

अर्थात् मुख को बन्द कर दोनों नथुनों से वायु को कुछ आवाज के साथ धीरे – धीरे इस प्रकार लेना चाहिए, जिससे कण्ठ से लेकर हृदय प्रदेश तक इसके स्पर्श का अनुभव हो।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम ध्यानात्मक आसन में बैठते हैं।
- अब बच्चे के खर्राटे के समान गले को आवाज करे जिससे गला संकुचित हो।

- तत्पश्चात् ठोड़ी को कण्ठ कूप पर लगाते हुए जालन्धर बन्ध लगाए तथा क्षमतानुसार रुके।
- उसके बाद बन्ध को (जालन्धर बन्ध) को हटाते हुए सामान्य अवस्था में वापस आए।
- ये इसका एक अभ्यास हैं। पुनः इसी प्रक्रिया को 5 से 7 बार तक दोहराए।

लाभ –

- इस प्राणायाम का सीधा प्रभाव गले पर पड़ता है। जिससे थायराइड तथा पैराथायराइड ग्रन्थियों प्रभावित होती है। जिससे (बढ़ा हुआ तथा कम हुआ) थायराइड रोग ठीक होता है।
- जो लोग बोलने में हकलाते हैं, तुतलाते हैं, तथा जिनकी आवाज में कर्कश होती है, उन लोगों पर भी उज्जायी प्राणायाम का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अर्थात् स्वर मधुर तथा हकलाना, तुतलाना खत्म हो जाता है।
- महिलाओं की मासिक धर्म सम्बन्धी अनियमितता को नियमित करता है।
- नाडी तन्त्र को स्वस्थ बनाता है।

1.3.4 – सीत्कारी प्राणायाम –

सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृम्भिकाम्।

एवमभ्यासयोगेन कामदेवा द्वितीयकः॥ 2/54॥

अर्थात् मुख से सीत्कार (सी, सी की आवाज) करते हुए पूरक करना चाहिए और रेचक केवल नासिका से ही करना चाहिए। इस प्रकार से अभ्यास करते हुए साधक दूसरा कामदेव जैसा हो जाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम एक चटाई पर कमर और गर्दन सीधी करते हुए बैठ जाना चाहिए।
- प्राणायाम को करने के लिए ध्यान का कोई भी आसन लगाया जा सकता है, जो साधक के लिए उपयुक्त हो।
- तत्पश्चात् दोनों जबड़ों को आपस में मिलाकर मुंह से पूरक करना चाहिए और थोड़ी देर अन्तः कुम्भक (अन्दर ही श्वास को रोकना) करना चाहिए।
- फिर कुम्भक को हटाकर दोनों नासा छिद्रों से रेचक करना चाहिए।
- अभ्यास कम को बढ़ाने के लिए पुनः अभ्यास प्रक्रिया को दोहराए, यही सीत्कारी प्राणायाम की सामान्य विधि हैं।
- इस प्राणायाम को करने का समय प्रातः काल का ही होना चाहिए, क्योंकि पूरक की प्रक्रिया मुंह के द्वारा बतायी गयी है।

लाभ –

- इस प्राणायाम के नियमित अभ्यास से साधक का भूख एवं प्यास पर नियन्त्रण होने लगता हैं।
- सामान्यतः यह माना जाता है कि इस प्राणायाम से शारीरिक गर्मी को कम करने के लिए किया जाता है।

- इसके नियमित अभ्यास से मांस पेशियों में शिथिलता आती है तथा मन शान्त होता है।
- ग्रीष्मकाल में यह प्राणायाम बहुत ही लाभकारी है।
- उच्च रक्तचाप को कम करता है तथा उदर की अम्लता को भी शान्त करता है।
- ग्रीष्म कालीन ऋतु में जिन लोगों को अधिक पसीना आता है, उन लोगों के लिए भी लाभकारी प्राणायाम है।

1.3.5 – शीतली प्राणायाम –

जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत् कुम्भसाधनम्।

शनकैर्घ्राणरन्ध्राभ्यां रेचयेत् पवनं सुधीः॥ 2/57॥

अर्थात् जीभ को दोनों ओर से मोड़कर, परनाले की तरह विशेष स्थिति में लाकर फिर उसके द्वारा वायु अन्दर खींचकर पहले की तरह कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। पश्चात् बुद्धिमान (साधक) को धीरे – धीरे नासिका छिद्रों द्वारा वायु का रेचक करना चाहिए।

वर्तमान प्रचलित विधि –

नोट – शीतली प्राणायाम की परम्परिक विधि और वर्तमान प्रचलित विधि में कोई भी परिवर्तन नहीं है। प्रिय विद्यार्थियों अभी तक आप जितनी भी विधियाँ पढ़ रहे थे सभी में थोड़ा सा बदलाव आपने देखा, परन्तु कुछ ऐसी भी विधियाँ हैं जिनमें विल्कुल भी परिवर्तन नहीं है, उन्ही विधियों (प्राणायाम की विधि) में से एक विधि शीतली प्राणायाम की है, जो निम्नलिखित है।

- सर्वप्रथम किसी मैट पर बैठते हैं तथा कमर, गर्दन को सीधे रखते हुए आखों को बन्द करते हैं।
- अब जीभ या जीवह्मा को बाहर निकालते हुए परनाले के समान करते हैं।
- तत्पश्चात् मुख से ही वायु का पान करते हैं तथा कुम्भक लगाते हैं।
- फिर धीरे – धीरे कुम्भक को हटाते हुए नासिका से वायु का रेचक करते हैं।

लाभ –

- यह प्राणायाम मानसिक एवं भावनात्मक उत्तेजनाओं को शान्त करता है, तथा पूरे शरीर में प्राण के प्रवाह को निर्बाध बनाता है।
- इस प्राणायाम के अभ्यास से अजीर्ण, कफ और पित्त की बिमारी में लाभ मिलता है।
- शीतली प्राणायाम के नियमित अभ्यास से भूख एवं प्यास पर भी नियन्त्रण प्राप्त होता है।
- अन्य वे सभी लाभ जो शीतकारी प्राणायाम द्वारा प्राप्त होते हैं, वे सब लाभ भी प्राप्त होते हैं।

अभ्यास हेतु प्रश्न

• बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. हठपदीपिका में कुम्भक के प्रकार बताए गए हैं –

a- 7

b- 5

- अनुलोम – सीधा
- विलोम – उल्टा
- बाह्य कुम्भक – बाहर श्वास रोक देना
- अन्तः कुम्भक – अन्दर श्वास रोक देना
- आभा – चमक
- ग्रीष्म काल – गर्मी की ऋतु

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर –:

1. a
2. b
3. d
4. a

- रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –:

- (1) मस्तिष्क
- (2) प्यास
- (3) पंच उपदेशों
- (4) शीत ऋतु

- सत्य और असत्य को इंगित कर –:

- (1) असत्य
- (2) सत्य
- (3) असत्य
- (4) असत्य
- (5) असत्य

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति ।
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार) ।
3. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती – प्राण, प्राणायाम प्राण विद्या बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार) ।

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शीतली एवं सीत्कारी प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?
2. हठ प्रदीपिका में वर्णित किन्ही दो प्राणायामों की विधियों की विस्तृत विवेचना कीजिए ?

इकाई – 2 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों की विधि व लाभ – भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा व प्लावनी प्राणायाम

2.1 – प्रस्तावना

2.2 – उद्देश्य

2.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों की विधि व लाभ

2.3.1 – भस्त्रिका प्राणायाम विधि व लाभ

2.3.2 – भ्रामरी प्राणायाम विधि व लाभ

2.3.3 – मूर्च्छा प्राणायाम विधि व लाभ

2.3.4 – प्लावनी प्राणायाम विधि व लाभ

2.4 – सारांश

2.5 – शब्दावली

2.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 – निबंधात्मक प्रश्ने

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने नाड़ीशोधन, सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी तथा शीतली प्राणायामों की विधि एवं लाभों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, प्लावनी की विधि व लाभों का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

- हठप्रदीपिका में वर्णित शेष चार कुम्भकों को जान सकेंगे।
- प्राणायामों की अन्य विधि से भली – भांति परिचित हो सकेंगे।
- प्राणायामों का भली – भांति विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्राणायामों का लाभों को आसानी से समझ सकेंगे।
- प्राणायाम की पारम्परिक विधि एवं वर्तमान विधि के अन्तर को जान सकेंगे।

2.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों की विधि व लाभ –

प्रिय विद्यार्थियों इससे पूर्ववत् इकाई में आपने प्रारम्भ के चार कुम्भको का वर्णन किया था। प्रस्तुत इकाई में अन्त के चार कुम्भको का वर्णन कर सकेंगे। जिसमें पुनः आपको पारम्परिक एवं वर्तमान प्रचलित विधि दोनों का परिचय दिया जाएगा। जिससे आप प्राणायामों की दोनों ही प्रकार की विधियों से अवगत हो सकेंगे।

जिज्ञासु विद्यार्थियों अब आपको प्राणायाम के प्रकारों का पुनः वर्णन किया जा रहा है। अतः भली – भांति प्राणायाम को समझने का प्रयास करें। प्राणायामों के प्रकारों का वर्णन निम्नलिखित है –

2.3.1 – भस्त्रिका प्राणायाम –

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छाप्लावनीत्यष्ट कुम्भका ॥ 2/44 ॥

अर्थात् सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुम्भक होते हैं। हठप्रदीपिका में भस्त्रिका प्राणायाम को परिभाषित करते हुए स्वात्माराम जी कहते हैं यथा –

सम्यक् पद्यासनं बद्ध्वा समग्रीवोदरं सुधीः।

मुखं संयम्य यत्नेन प्राणं घ्राणेन रेचयेत्॥ 2/60॥

अर्थात् भली प्रकार पद्मासन लगाकर बुद्धिमान साधक गर्दन और उदर (शरीर) सीधा रखे, मुख को बन्द कर यत्नपूर्वक वायु को थोड़ी आवाज के साथ नाक से छोड़े, जिससे वायु स्पर्श का अनुभव हृदय कमल, कण्ठ और कपाल पर्यन्त हो। पश्चात् वायु को हृदय कमल तक वेगपूर्वक आवाज के साथ पूरित करें, फिर छोड़े। इस प्रकार साधक को बार – बार पूरक रेचक करना चाहिए।

वर्तमान विधि के अनुसार –: वर्तमान में भस्त्रिका प्राणायाम को करने की तीन विधियाँ बतायी गयी हैं, जो निम्नलिखित हैं –

- तीव्र गति – अभ्यास को जल्दी करना।
- मध्यम गति – अभ्यास को सामान्य गति से करना।
- मन्द गति – अभ्यास को हल्की गति से करना।

इन तीनों प्राणायाम को करने की विधि समान ही है बस साधक अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार पूरक एवं रेचक के वेग को कम, ज्यादा कर सकता है।

- सर्वप्रथम किसी भी आसन में कमर एवं गर्दन को सीधा करते हुए आखों को सहजता से बन्द करें।
- अब तर्जनी अंगुली को अंगूठे से स्पर्श करें।
- अब श्वास जिस वेग से अन्दर भर रहे है उसी वेग से बाहर करे। पूरक एवं रेचक एक ही अनुपात में रहें।
- अगर अभ्यास तेज गति से किया जा रहा है तो पूरक एवं रेचक की प्रक्रिया लौहार की धौंकनी समान अर्थात् तीव्र ही होगी।
- ये भस्त्रिका प्राणायाम की वर्तमान में प्रचलित विधि हैं।
- तत्पश्चात् दोनों हाथों को आपस में तीव्र गति से रगड़े अब आखों पर मसाज करें और धीरे –धीरे आंखें खोल दें।

लाभ –

- इस प्राणायाम के अभ्यास से दमा एवं फेफड़े सम्बन्धी अन्य रोगों में लाभ मिलता है।
- निम्न रक्तचाप के रोगी को भी इस प्राणायाम से लाभ मिलता है।
- महिलाओं को प्रसव के दौरान होने वाली पीड़ा में लाभ मिलता है।
- चर्म रोगों को दूर करने में यह उत्तम कोटि का प्राणायाम माना जाता है।
- इस प्राणायाम के नियमित अभ्यास से गले सम्बन्धी सूजन तथा कफ में भी आराम पहुँचता है।
- पाचन तन्त्र को स्वस्थ बनाता है, तथा शरीर में ऊर्जा को बढ़ाता है।

2.3.2 – भ्रमरी प्राणायाम –:

वेगाद घोषं पूरकं भृङ्गनादम्
 भृङ्गीनादं रेचकं मन्दमन्दम्।
 योगीन्द्राणामेवमभ्यासयोगात्
 चित्ते जाता काचिदानन्दलीला ॥ 2/68 ॥

अर्थात् वेग से भ्रमर गुंजार के समान आवाज करते हुए पूरक करना चाहिए। तत्पश्चात् भ्रमर की गुंजन के समान आवाज करते हुए धीरे – धीरे रेचक करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से उत्तम साधकों के चित्त में एक अपूर्व आनन्द लीला की उत्पत्ति होती है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम किसी ध्यानात्मक आसन में बैठते हुए आखों को सहजता के साथ बन्द करते हैं।
- कुछ देर मन को श्वास एवं प्रश्वास की प्रक्रिया पर केन्द्रित करते हैं।
- अब दोनों हाथों के अंगूठों से दोनों कानों को अच्छी तरह से बन्द करते हैं जिससे बाहर की कोई आवाज सुनायी न दें।
- तत्पश्चात् तर्जनी अंगुलियों को माथे पर रखते हुए शेष तीनों अंगुलियों आखों पर रखते हैं।
- अब धीरे – धीरे नासिका से पूरक करते हैं तथा नासिका से रेचक करते हुए मुंह से ओंकार की (नाद) ध्वनि का गुंजार करते हैं किन्तु मुंह बन्द ही रखते हैं।
- इसी प्रक्रिया को पॉच से दस बार तक दोहराते हैं।

लाभ –:

- बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों को अन्तर्मुखी बनाने में विशेष लाभ पहुँचाता है।
- तनाव तथा तनाव से उत्पन्न होने वाले रोग जैसे उच्च रक्तचाप, अनिद्रा इत्यादि में इस प्राणायाम से लाभ मिलता है।

2.3.3 – मूर्च्छा प्राणायाम –:

पूरकान्ते गाढतरं बद्ध्वा जालन्धरं शनैः।
 रेचयेन्मूर्च्छानारव्येयं मनोमूर्च्छा सुखप्रदा ॥ 2/69 ॥

अर्थात् पूरक कर लेने के बाद अति दृढ़तापूर्वक जालन्धर बन्ध लगाकर धीरे – धीरे वायु का रेचक करें। यह मूर्च्छान्य नामक कुम्भक मनोमूर्च्छा लाने वाली तथा सुख देने वाली है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- किसी भी प्राणायाम को करने का सबसे अच्छा आसन पद्मासन माना जाता है, इसलिए इस प्राणायाम को करते समय पद्मासन में ही बैठना चाहिए।
- उसके बाद कमर गर्दन को सीधा कर आखों को सहजता से बन्द करते हैं एवं शरीर को शिथिल बनाते हैं।
- तत्पश्चात् धीरे – धीरे पूरक करते सिर को छत की तरफ करते हैं और आखों को खोलते जाते हैं लगभग 40 अंश के कोण तक आँखें पूरी तरह खुल जाती हैं।
- अब आज्ञा चक्र पर आखों को केन्द्रित कर कुम्भक लगाया जाता है।

- तत्पश्चात् कुम्भक को हटाते हुए धीरे – धीरे श्वास को छोड़ते जाते हैं और सामने आते – आते आखों को बन्द कर लेते हैं।
- अभ्यास को दोहराने के लिए इस प्रक्रिया को 4–5 बार करते हैं किन्तु यदि मूर्च्छा आनी शुरू हो जाए तो प्राणायाम को रोक कर मन को एकाग्र करते हैं और धीरे – धीरे आखों को खोल देते हैं।

नोट —: वर्तमान प्रचलित विधि घेरण्ड संहिता के विधि के समान ही है। किन्तु प्रिय विद्यार्थियों आपसे अनुरोध है, कि इस प्राणायाम का अभ्यास अकेले या पुस्तक पढ़कर न किया जाए। उचित मार्गदर्शन में ही अभ्यास करें। क्योंकि यह उच्च अभ्यासों की श्रेणी में भी आता है। इसलिए वर्तमान में यह प्राणायाम बहुत ज्यादा प्रचलित नहीं है। सामान्यतः आठ प्राणायामों को ही वर्तमान में योगाचार्यों के द्वारा कराया जा रहा है। इसलिए आप की सजगता नितान्त आवश्यक है।

लाभ —

- बहिर्मुखी व्यक्तित्व के व्यक्तियों को अर्न्तमुखी बनाने का अच्छा अभ्यास हैं।
- यह एक शक्तिशाली प्राणायाम है, इसकी सिद्धि किया हुआ साधक हमेशा आनन्दानुभूति करता है।
- इसके नियमित अभ्यास से मस्तिष्क क्षेत्र को विश्राम मिलता है।
- जो भी साधक इस प्राणायाम का नियमित अभ्यास करता है और जब वह नियमित साधना में सध जाता है तो स्वतः ही भौतिकवादिता से ऊपर उठने लगता है।
- मूर्च्छा प्राणायाम के अभ्यास मन को स्वतः शान्त होता है तथा धीरे – धीरे चिन्ताएं शून्य में विलीन होती चली जाती है।

2.3.4 — प्लावनी प्राणायाम —:

अन्तः प्रवर्तितोदारमारूतापूरितोदरः।

पयस्यगाधेऽपि सुखात् प्लवते पद्यपत्रवत्॥ 2/70॥

अर्थात् (श्वास नालिका द्वारा) उदर को पर्याप्त मात्रा में वायु से पूरी तरह भर ले। ऐसा साधक अथाह जल में भी कमल पत्र के समान सरलता से तैरता है।

वर्तमान विधि —:

- यह एक प्रकार की वायु धौति है।
- जिस प्रकार मुंह से जल पिया जाता है, ठीक उसी तरह इस प्राणायाम में वायु का पान (पिया) किया जाता है।
- वायुपान इस तरह किया जाता है जिससे पेट (उदर) पूरी तरह भर जाए।
- तत्पश्चात् इस तरह डकार ली जाती है कि अन्दर की दूषित वायु बाहर जाए।
- इस प्राणायाम को दोबारा करने के लिए पुनः प्रक्रिया को दोहराना चाहिए।

लाभ —:

- पाचन तन्त्र को स्वस्थ बनाने के लिए लाभकारी प्राणायाम है।
- दूषित वायु को दूर कर उदर को हल्का बनाता है।

- उदर के समस्त रोगों को दूर करता है, साथ ही हिस्टीरिया को दूर करने में भी सहायक है।
- जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, तथा कृमि रोगों को दूर करता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

एक शब्द में उत्तर दीजिए।

1. लोहार की धौकनी का सम्बन्ध किस प्राणायाम से है।
2. सर्वाधिक मानसिक शक्ति किस प्राणायाम को करने से बढ़ती है।
3. किस प्राणायाम को करने से व्यक्ति मूर्छित हो सकता है।
4. किस प्राणायाम को करने से साधक अथाह जल में भी कमल पत्र के समान सरलता से तैर सकता है।

2.4 – सारांश –

हठप्रदीपिका हठयोग का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। स्वामी स्वात्माराम जी ने हठप्रदीपिका में प्राणायाम का विस्तार से वर्णन किया है। हठप्रदीपिका में प्राणायाम को कुम्भक कहा गया है। प्रस्तुत इकाई में आपने भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, प्लावनी की विधि व लाभों का अध्ययन किया जिज्ञासु पाठको को चाहिए कि एक उचित मार्गदर्शन में ही प्राणायामों का अभ्यास करें बिना मार्गदर्शन से उपरोक्त प्राणायामों के नकारात्मक प्रभाव भी पड सकते हैं।

2.5 – शब्दावली

- इडा – बाया स्वर, चन्द्र स्वर
- पिंगला – दाया स्वर, सूर्य स्वर
- बाह्य कुम्भक – बाहर श्वास रोक देना
- अन्तः कुम्भक – अन्दर श्वास रोक देना
- आभा – चमक
- ग्रीष्म काल – गर्मी की ऋतु

2.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. भस्त्रिका 2.भ्रामरी 3.मूर्च्छा प्राणायाम 4.प्लावनी प्राणायाम

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति ।
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।
3. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती– प्राण, प्राणायाम प्राण विद्या बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. भस्त्रिका एवं मूर्च्छा प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?
2. हठ प्रदीपिका में वर्णित किन्ही दो प्राणायामों की विधियों की विस्तृत विवेचना कीजिए ?

इकाई 3 मुद्रा व बन्ध अर्थ परिभाषा एवं उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मुद्रा

15.3.1 मुद्रा का अर्थ

15.3.2 मुद्रा की परिभाषा

3.4 मुद्रा के प्रकार

3.4.1 हठप्रदीपिका के अनुसार

3.4.2 घरेण्ड संहिता के अनुसार

3.4.3 शिव संहिता के अनुसार

3.5 बन्ध

15.5.1 बन्ध का अर्थ एवं परिभाषा

15.5.2 बंध के प्रकार

3.6 मुद्रा एवं बन्ध का उद्देश्य

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में सभी पाठक योग के अभ्यास में मुद्रा एवं बन्ध की आवश्यकता से परिचित होने के साथ-साथ इनके अर्थ परिभाषा को भी ठीक से जान पाने में सक्षम होंगे। प्रस्तुत इकाई ये स्पष्ट करेगी कि योग के क्षेत्र में मुद्राओं की एवं बन्धों की क्या भूमिका होती है। ये योग मार्ग में आगे बढ़ने में कैसे सहायक होते हैं। साथ ही आप ये भी जानेंगे कि किस प्रकार से ये उच्च अभ्यास के अन्तर्गत आता है।

हठयोग में मुद्राओं का विशेष महत्व है। शुद्धि क्रिया एवं आसन के द्वारा जब साधक अपने शरीर को विजातीय पदार्थों से रहित कर शुद्ध कर लेता है और साथ ही आसनों के अभ्यास द्वारा शरीर में दृढ़ता प्राप्त करता है तो इसके बाद घरेण्ड मुनि ने मुद्राओं का अभ्यास कर शरीर में स्थिरता लाने की बात कही है। स्वात्माराम जी ने हठप्रदीपिका में आसन एवं प्राणायाम के बाद मुद्राओं का अभ्यास करने की बात को विस्तार से समझाया है।

अतः इससे स्पष्ट होता है कि मुद्रा का अभ्यास आसन एवं प्राणायाम से भी उच्च अभ्यास है। यह अभ्यास प्राणमयकोश एवं मनोमय को प्रभावित कर उनकी ऊर्जा शक्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि हमारे शरीर में अनेकानेक नाड़ियाँ गति करती हैं। यह नाड़ियों में संवेदनाओं की उत्पत्ति होती है। मन, मस्तिष्क पर इसका प्रभाव

पड़ता है। फलतः अनेकानेक परिवर्तन हमें वहाँ देखने को मिलते हैं, जिन पर समय-समय पर हमारा ध्यान जाता है।

प्रारम्भिक काल में योगाभ्यास की विभिन्न विधियाँ बहुत ही गुप्त हुआ करती थी, परन्तु वर्तमान काल में यह विधियाँ बहुत ही प्रचलित हो गई हैं। आसन प्राणायाम मुद्रा एवं बन्ध आदि का अभ्यास बहुत ही गुप्त अभ्यास माना जाता था। प्रारम्भ में इन शक्तिशाली एवं प्रभावी अभ्यास का ज्ञान गुरुजन केवल उन्हीं शिष्यों को प्रदान करते थे जो जिज्ञासु एवं समर्पित होते हों। परन्तु यह विद्याएँ समय के साथ-साथ व्यक्तियों के कल्याणार्थ बहुत ही सहजता से उपलब्ध हो जाती हैं। विशेष रूप से इस नवीन युग में गुप्त रखी जाने वाली विद्याओं का ही अधिक बोलबाला है। योगाभ्यास में मुद्राएँ एवं बन्ध भी विशेष प्रभावकारी एवं शक्तिशाली विद्याएँ हैं। इनके द्वारा सुषुप्त सूक्ष्म शक्तियों की जाग्रति सम्भव होती है।

हठयोगाभ्यास में मुद्राओं का विशेष महत्व है। घेरण्डसंहिता नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ घेरण्ड मुनि द्वारा लिखा गया है जिससे घेरण्ड मुनि राजा चण्डकपालि को योग की शिक्षा दे रहे हैं तथा घेरण्ड संहिता के तीसरे अध्याय में उन्होंने मुद्राओं एवं बन्धों का वर्णन किया है। साथ ही हठप्रदीपिका नामक ग्रन्थ जो कि स्वात्माराम सूरि जी द्वारा लिखा गया है। जिसमें शिवजी, माता पार्वती को योग विद्या की शिक्षा दे रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में मुद्राओं एवं बन्धों का वर्णन विस्तार से किया गया है।

3.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई में आप जान पायेंगे कि –

- मुद्रा का योग में क्या अर्थ है।
- मुद्रा कितने प्रकार की होती है।
- मुद्रा के क्या उद्देश्य हैं।
- मुद्रा का वर्णन योग ग्रन्थों में कहाँ-कहाँ पर किया जाता है।
- बन्ध क्या होता है।
- बन्ध को किस प्रकार से परिभाषित किया गया है।
- बन्धों का क्या उद्देश्य है।
- योग ग्रन्थों में बन्धों का वर्णन कहाँ-कहाँ पर किया गया है।
- योग के अभ्यास में मुद्रा एवं बन्धों की क्या भूमिका है।

3.3 मुद्रा

प्राण जो कि हमारे स्थूल शरीर को जीवन्त बनाये हुए है। जिनके अभाव में हम क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते। यह शक्ति नाड़ियों के भीतर ही गति करती है। प्राण शक्ति का शरीर में कम होना या अधिक होना शारीरिक और मानसिक शक्ति के कम होने और बढ़ने को प्रभावित करता है। हम कह सकते हैं कि समय-समय पर मन एवं प्राण के क्षेत्र में हलचल होती रहती है, ये विक्षिप्तता एवं चंचलता का सिलसिला निरन्तर हम अनुभव करते रहते हैं। मुद्राओं के द्वारा इस पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

3.3.1 मुद्रा का अर्थ – स्थूल रूप से समझें तो चित्त के विशेष भाव को मुद्रा कहते हैं। जिन मुद्राओं का वर्णन हमें योग ग्रन्थों में मिलता है, वे चित्त के विशेष भाव एवं प्राण की अवस्थाओं की द्योतक हैं। मुद्रा की जानकारी एवं अनुभव बहुत कम साधकों को होता है, ये

वो साधक होते हैं जो योग क्षेत्र में बहुत निपुण एवं निरन्तर अभ्यासी होते हैं, तथा इस क्षेत्र में इनकी पकड़ होती है।

भारतीय संस्कृति में नृत्य का अपना अलग महत्व है। उच्च श्रेणी के भारतीय नृत्यों में हम मुद्राओं को देख सकते हैं। नृत्य में तरह-तरह की हस्त मुद्राओं को देखा जा सकता है। हम कह सकते हैं कि भारतीय नृत्यों में मुद्रा हाथों की विशेष अवस्था है जो आंतरिक भावों या संवेदनाओं का संकेत करती हैं। क्रोध के भाव में आंखों, हाथ एवं शरीर द्वारा उसे प्रदर्शित किया जाता है। जिस प्रकार नृत्य की मुद्राओं के द्वारा विभिन्न भावों को प्रदर्शित किया जाता है, ठीक उसी प्रकार योग मुद्राओं द्वारा अंतरंग भावों को प्रकट करके साधक के आध्यात्मिक भावों की ओर संकेत किया जाता है।

सामान्यतः देखा गया है कि यदि कोई साधक किसी मुद्रा का अभ्यास लम्बे समय तक करता है तो वह उस मुद्रा के भाव को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि शरीर और मन में उसी प्रकार की स्थिति, उसी प्रकार का उद्वेग या संवेदना उत्पन्न होने लगती है। हम जिस भी शारीरिक स्थिति को अपनाते हैं, वह हमारे तन्त्रिका तन्त्र में एक विशेष प्रकार की संवेदना उत्पन्न कर हमारी मस्तिष्क तरंगों में परिवर्तन लाती है। मस्तिष्क तरंगों से यह परिवर्तन फिर चेतना की स्थिति को प्रभावित करता है, और कुछ समय तक उस विशेष भाव को हम अपने भीतर, अपने मानस में अनुभव करते हैं।

आध्यात्मिक अर्थ में हम कह सकते हैं कि मुखमण्डल के विशेष भावभंगिमा की स्थिति को मुद्रा कहते हैं। जैसे मन्दिरों में विभिन्न मूर्तियां भिन्न-भिन्न मुद्राओं में प्रतिष्ठित की जाती हैं, उसी तरह यौगिक मुद्राएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं।

मुद्रा शब्द को अनेक अर्थों में जाना जा जाता है। जैसे – सामान्यतः (1) व्यवहारिक अर्थ में मुद्रा को रुपये-पैसे के रूप में जाना जाता है। अर्थशास्त्र में इसे विनीमय का साधन कहा जाता है। जिस तरह अर्थशास्त्र में विनीमय हेतु मुद्रा अति आवश्यक है। ठीक उसी तरह योगी के लिये मुद्रा बहुत महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार से भौतिक जीवन में मुद्रा को गोपनीय रखा जाता है ठीक उसी प्रकार यौगिक मुद्राएँ भी अतिगोपनीय होती हैं।

3.3.2 मुद्रा की परिभाषा –

(1) मुदं आनन्दं राति इति मुद्रा

अर्थात् – आनन्द की प्राप्ति जिससे हो उसे मुद्रा कहते हैं।

(2) आसन, प्राणायाम एवं बंध की सम्मिलित वह विशिष्ट स्थिति जिसके द्वारा उच्च आध्यात्मिक शक्ति का जागरण संभव हो, मुद्रा कहते हैं।

3.4 मुद्रा के प्रकार

यौगिक ग्रन्थों में अलग-अलग मुद्राओं का वर्णन मिलता है।

3.4.1 हठप्रदीपिका के अनुसार – हठप्रदीपिका में तृतीय अध्याय के छठे श्लोक में दस मुद्राओं का वर्णन मिलता है जिसका वर्णन इस प्रकार से है –:

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।

उड्डीयानं मूलबन्धस्ततो जालन्धराभिधः॥

करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्॥

– 3/6 हठप्रदीपिका ॥

अर्थात् महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डीयान, मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालिनी।

तीसरे अध्याय के सातवें श्लोक में आगे वर्णन करते हुए बताया गया है कि आदिनाथ द्वारा बतायी गयी ये दस मुद्राएँ हैं, जो बुढ़ापा और मृत्यु को दूर करने वाली हैं, और आठ प्रकार के ऐश्वर्य को देने वाली हैं। सभी सिद्धों के लिये प्रिय ये मुद्राएँ देवताओं के लिये भी दुर्लभ हैं।

3.4.1 घेरण्ड संहिता के अनुसार — घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय के प्रथम, द्वितीय, एवं तृतीय श्लोक में 25 (पच्चीस) मुद्राओं का वर्णन मिलता है। जो कि इस प्रकार से हैं—

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।

मूलबन्धो महाबन्धो महाबेधश्च खेचरी॥ 1 ॥

विपरीतकरी योनिर्वज्रोणि शक्तिचालनी।

ताड़ागी माण्डुकी मुद्रा शाम्भवी पन्चधारणा॥ 2 ॥

अश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजागिनी।

पन्चविंशतिमुद्राश्च सिद्धिदा इह योगिनाम्॥ 3 ॥

अर्थात् महर्षि घेरण्ड ने कहा — महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान बन्ध, जालन्धर बन्ध, मूलबन्ध, महाबन्ध, महाबेध मुद्रा, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, योनिमुद्रा, वज्रोणि मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा, माण्डुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, पार्थिवी धारणा, आम्भसी धारणा, आग्नेयी धारणा, वायवीय धारणा, आकाशी धारणा, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी और भुजंगी इत्यादि पच्चीस मुद्रायें हैं। ये योगियों के लिये सिद्धि प्रदान करने वाली हैं। प्रस्तुत श्लोक में 25 मुद्राओं के अन्तर्गत 16 मुद्राओं, 5 धारणाओं एवं 4 बन्धों का वर्णन किया गया है। ये मुद्राएँ अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व वशित्व आदि आठ सिद्धिओं को प्रदान करने वाली होती हैं। ऐसा ग्रन्थों में वर्णन मिलता है।

3.4.3 शिव संहिता के अनुसार — शिव संहिता नामक हठयोग के ग्रन्थ में भी 11 यौगिक मुद्राओं का वर्णन मिलता है। अभ्यास की दृष्टि से यौगिक मुद्राएँ तीन प्रकार की होती हैं—

(1) प्राणायामिक मुद्रा

(2) अप्राणायामिक मुद्रा

(3) हस्तमुद्रायें

(1) **प्राणायामिक मुद्रा** — प्राणायामिक मुद्राएँ ऐसी मुद्राएँ होती हैं, जिनमें आसन के साथ-साथ बन्ध एवं प्राणायाम का विशेष संयोग होता है। जो कुण्डलिनी शक्ति जागरण में विशेष सहायक होती है। उदाहरण — महामुद्रा, महाबन्ध, महाबेध, विपरीतकरणी, अश्वनी मुद्रा, योग मुद्रा, शक्ति चालिनी आदि।

(2) **अप्राणायामिक मुद्रा** — अप्राणायामिक मुद्राएँ ऐसी मुद्रायें होती हैं जिनमें आसन के साथ बन्ध एवं प्राणायाम की आवश्यकता नहीं होती है। प्राणायाम के बिना ही दृष्टि को विशेष स्थान पर स्थिर किया जाता है। ये मुद्राएँ भी कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में सहायक होती हैं। उदाहरण — शाम्भवी मुद्रा, खेचरी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, भूचरी मुद्रा, चाचरी मुद्रा, नभोमुद्रा आदि।

(3) **हस्त मुद्राएँ** — हस्तमुद्राएँ ऐसी मुद्राएँ होती हैं जिनमें हाथ की हथेलियों को मिलाकर या अलग-अलग अंगुलियों के माध्यम में मुद्रा बनायी जाती है। इसमें भी प्राणायाम नहीं किया जाता है। श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक ही रखा जाता है।

ये हस्तमुद्रायें भी प्राणतत्त्व और पंचतत्त्वों को प्रभावित करती हैं। शरीर में उपस्थित नाड़ियों को प्रभावित कर उनकी संवेदनाओं को प्रभावित करती हैं।

3.5 बन्ध

बन्ध हठयोग का बहुत ही महत्वपूर्ण अभ्यास है। प्राणायाम एवं मुद्रा दोनों के अभ्यास में बन्ध का प्रयोग किया जाता है। हठप्रदीपिका एवं घरेण्ड संहिता आदि ग्रन्थों में मुद्राओं के अन्तर्गत ही बन्धों का भी वर्णन किया गया है, लेकिन इसमें होने वाली विशेष क्रिया (बाँधने की क्रिया) होने के कारण हम इसे भिन्न रूप में भी वर्णन कर सकते हैं।

बन्ध का अभ्यास पूर्ण रूप से शारीरिक अभ्यास है। इस अभ्यास के द्वारा व्यक्ति शरीर के विभिन्न अंगों एवं नाड़ियों के स्थान विशेष में संकुचित कर उनमें नियन्त्रण स्थापित करता है।

शारीरिक स्तर पर नाड़ियों को संकुचित करके सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त विचारों एवं आत्मिक तरंगों में प्रवेश कर ये सूक्ष्म शरीर में उपस्थित चक्रों और ग्रन्थियों पर सूक्ष्म प्रभाव डालने में सक्षम होते हैं यौगिक ग्रन्थों में बन्धों का विशेष महत्व है। विशेष प्रभाव के लिये बन्धों का प्रयोग किया जाता है।

सुषुम्ना नाड़ी जो कि अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ी है, इसमें प्राण के स्वतन्त्र प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करने वाली ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि, रुद्र ग्रन्थि ये सभी बन्ध के अभ्यास से खुल जाती हैं। इनके खुलने के कारण प्राण का प्रवाह समस्त नाड़ियों में सुचारु रूप से होता है। सुषुम्ना में भी प्राण प्रवाह उचित रूप से होने लगता है। फलतः आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न होती है। उच्च स्तर के योग अभ्यासी को सुषुम्ना नाड़ी की अनुभूति होती है। ऐसी ही साधना बढ़ने पर चक्रों के जागरण की भी अनुभूति साधक को होती है, इस प्रक्रिया के लिये बन्ध का अभ्यास बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सहायक सिद्ध होता है।

3.5.1 बन्ध का अर्थ एवं परिभाषा — बन्ध शब्द का शाब्दिक अर्थ है — बाँधना या कड़ा करना। इसमें शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों को धीरे-धीरे परन्तु शक्ति के साथ संकुचित एवं कड़ा किया जाता है। इसलिये इसे बन्ध कहा जाता है।

बन्ध द्वारा शरीर के आन्तरिक अंगों की मालिश होती है। उनमें उपस्थित रक्त का जमाव दूर होता है। यह अंग विशेष से सम्बन्धित नाड़ियों की कार्य क्षमता में कार्य को नियमित करती है। फलतः शारीरिक कार्य एवं स्वास्थ्य में उन्नति होती है। बन्ध को परिभाषित करते हुए हम कह सकते हैं कि —

“जिसके द्वारा शरीर के अंग विशेष को बाँधकर वहाँ से आने-जाने वाली संवेदनाओं को रोककर लक्ष्य विशेष की ओर प्रवाहित किया जाता है, उसे बन्ध कहते हैं।”

बन्ध का अभ्यास एक स्नायविक अवरोध है, जो शरीर और मस्तिष्क के भीतर जितनी तन्त्र-तन्त्रिकायें हैं उनमें उत्पन्न हो रही संवेदनाओं को अवरुद्ध कर देते हैं। और दूसरे प्रकार की संवेदना को जाग्रत करते हैं।

आन्तरिक अंगों में जहाँ पर भी संकुचन एवं प्रसारण की क्रिया की जाती है, वह आन्तरिक अंगों से सम्बन्धित प्रक्रियाओं को बदल देती है, संवेग बदल जाते हैं। इससे शरीर में एक विशेष या भिन्न उत्तेजना या शान्ति की अनुभूति होती है, फलतः मानसिक रूप से स्थिरता का आभास होता है।

3.5.2 बंध के प्रकार — यौगिक ग्रन्थों में तीन प्रकार के बन्धों का वर्णन मिलता है। इन तीन बन्धों का सम्मिलित रूप महाबन्ध के नाम से जाना जाता है।

- (1) जालन्धर बन्ध
- (2) उड्डियान बन्ध
- (3) मूलबन्ध
- (4) महाबन्ध

(1) **जालन्धर बन्ध** — जालन्धर बन्ध में गले में उपस्थित नाड़ियों को संकुचित किया जाता है। जिसका प्रभाव सिर, गर्दन, कन्धे की मांसपेशियों एवं नाड़ियों पर पड़ता है। इसकी पूर्ण स्थिति में साधक अपनी चिबुक को कण्ठकूप से लगाता है। बाह्य कुम्भक एवं अन्तः कुम्भक के साथ इस अभ्यास को किया जाता है। इसमें प्राण प्रवाह को निम्नगामी किया जाता है।

(2) **उड्डियान बन्ध** — उड्डियान बन्ध के अभ्यास में पेट की मांसपेशियों का संकोच किया जाता है। इसमें पेट को अन्दर की ओर खिंचाव देकर पीठ से चिपकाया जाता है, और फिर डायफॉम को झूठी श्वास लेकर ऊपर की ओर खींचते हैं। बाह्य कुम्भक के साथ उड्डियान बन्ध का अभ्यास किया जाता है। इसमें प्राण प्रवाह को ऊर्ध्वगामी किया जाता है।

(3) **मूलबन्ध** — मूलबन्ध के अभ्यास में गुदा एवं मूत्रेन्द्रिय की मांसपेशियों का संकोच किया जाता है। जब केवल गुदा द्वार की मांसपेशियों का संकुचन किया जाता है तब उसे अश्विनी मुद्रा के नाम से जाना जाता है। और जब केवल मूत्रेन्द्रिय का संकुचन होता है तो उसे वज्रोणि मुद्रा कहा जाता है। मूलबन्ध में इन दोनों का एक साथ संकोच किया जाता है। इसमें प्राण प्रवाह को अधोगामी से ऊर्ध्वगामी किया जाता है।

(4) **महाबन्ध** — जब तीनों बन्धों को एक साथ किया जाता है, तब उसे महाबन्ध कहते हैं। पहले मूलबन्ध फिर उड्डियान एवं अन्त में जालन्धर बन्ध का अभ्यास किया जाता है। जो लाभ अलग-अलग बन्ध के अभ्यास से मिलता है, वह एक साथ महाबन्ध के अभ्यास से प्राप्त हो जाता है।

उपरोक्त बन्धों के अभ्यास में परिपक्वता आ जाने पर फिर इनको प्राणायाम एवं मुद्रा के साथ जोड़कर किया जाता है। इस प्रकार करने से सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त किया जाता है। यौगिक क्रियाओं में इस प्रकार सम्मिलित अभ्यास करने से सुषुप्त शक्ति की जागृति में अधिक लाभ प्राप्त होता है। कुण्डलिनी योग में जिन मुद्राओं एवं बन्धों का अभ्यास किया जाता है। उनसे प्राणमयकोश प्रभावित होता है, और प्राण की गति को परिवर्तित करने का प्रयास किया जाता है। फलतः अभ्यासी का मस्तिष्क प्रभावित होता है, और वह चित्त के भाव विशेष को प्रभावित करता है जिससे व्यक्ति बाह्यमुखी से अन्तर्मुखी होता है।

योगशास्त्र में वर्णित समस्त मुद्राएँ एवं बन्ध संवेदनाओं एवं उत्तेजनाओं को संयमित एवं शान्त बनाते हैं। जिससे अभ्यासी एकाग्र, स्थिर होता है। घरेण्ड मुनि ने मुद्रा का वर्णन विशेष रूप से स्थिरता प्राप्त करने के लिये बताया है।

वेदान्त में कहा गया है कि सब कुछ क्षणिक है, सब माया है। सब भ्रान्ति है। इसे छोड़ो और सत्य को अपनाओ। योग एवं तन्त्र ये बताता है कि जिस स्थिति में अभी तुम हो उसी को सीढ़ी बनाकर आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ो। इन्द्रियों के माध्यम से भी आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त की जा सकती है। जैसे— उन्हे इतना प्रबल बना लो कि मन अपने आप ही स्थिर हो जाये।

3.6 मुद्रा एवं बन्ध का उद्देश्य

घरेण्ड संहिता के तीसरे अध्याय के चौथे एवं पांचवे श्लोक में भगवान शिव पार्वती जी को मुद्राओं की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि —

मुद्राणां पटलं देवि कथितं तव संनिधौ।

येन विज्ञातमात्रेण सर्व सिद्धिः प्रजायते ॥ 4 ॥

गोपनीय प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित्।

प्रीतिदं योगिनां चैव दुर्लभं मरुतामपि ॥ 5 ॥

अर्थात् — हे देवी। मैंने तुम्हें मुद्राओं का ज्ञान प्रदान किया। एकमात्र इनका ज्ञान ही सिद्धियों को प्रदान करने वाला है। ये विद्याएँ योगियों को आनन्द देने वाली है। देवताओं को भी ये विद्याएँ सुलभ नहीं है। इन विद्याओं को सदा गुप्त रखना।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि मुद्राओं का अभ्यास साधक को सिद्धि प्रदान कराने वाला है। सिद्धि यौगिक अभ्यास की श्रेष्ठ उपलब्धि होती है। मुद्राओं का उद्देश्य आध्यात्मिक ही होता है, ये शरीर में सूक्ष्म प्रभाव डालती है। मुद्राओं के अभ्यास के साथ यदि शारीरिक और मानसिक प्रभाव पड़ता है तो ये सहज ही सम्भव है। जिन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है वे इस प्रकार से हैं —

(1) कुण्डलिनी शक्ति का जागरण — हठयोग में कुण्डलिनी शक्ति का जागरण साधक का लक्ष्य होता है। मुद्रा इसमें विशेष सहायक होती है। सुषुप्तावस्था में पड़ी कुण्डलिनी शक्ति को यौगिक मुद्राओं द्वारा जाग्रतकर ब्रह्मनाडी में प्रवेश करा कर उसे ऊर्ध्वगामी बनाया जाता है। ताड़ांगी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा आदि मुद्राएँ इसमें सहायक होती हैं। सामान्यतः माना जाता है कि कुण्डलिनी शक्ति हर जीव में होती है पर वह सोई हुयी अवस्था में होती है। इसे जाग्रत करने की आवश्यकता होती है। तभी व्यक्ति की चेतना ऊँची स्तर पर उठ पाती है। जो कि आध्यात्मिक लाभ के लिये आवश्यक भी होता है।

(2) अमृतरस का पान कराना एवं उसकी सुरक्षा — यौगिक ग्रन्थों की मान्यता है कि हमारा सिरो भाग चन्द्र मण्डल है और हमारा उदर भाग सूर्य मण्डल है। चन्द्रमण्डल से निरन्तर अमृतरस टपकता रहता है परन्तु सूर्यमण्डल में गिरने के कारण वह भस्म हो जाता है, उसका लाभ व्यक्ति को नहीं मिल पाता यदि इस अमृत का पान व्यक्ति कर ले या उसको भस्म होने से रोक ले तो अमृत का पूरा-पूरा लाभ व्यक्ति को मिलेगा। जैसे — बुढ़ापे की समाप्ति, जन्म-मरण के चक्रव्यूह से छुटकारा, मृत्यु पर विजय (अमरता) की प्राप्ति। वैज्ञानिक इसे मास्टर ग्लेण्ड पिट्यूटरी से टपकने वाले हार्मोन्स के रूप में मानते हैं। जालन्धर बन्ध, खेचरी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा आदि साधक के इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होती है।

(3) प्राणवायु को सुषुम्ना में प्रवेश कराना — मुद्रा एवं बन्धों के माध्यम से ग्रन्थियों को खोलकर प्राण प्रवाह को समुचित रूप से पूरे शरीर में प्रवाहित किया जाता है। मुद्रा एवं बन्धों द्वारा प्राण को स्थान विशेष में रोककर उसे इच्छानुसार क्षेत्र विशेष में प्रवेश कराया जाता है। जैसा कि हम जानते ही हैं कि प्राण केवल नाड़ियों में ही गति करता है। इस प्रकार विशेष अभ्यास द्वारा प्राणवायु को सुषुम्ना में प्रवेश कराया जाता है। फलतः हठयोग के परम उद्देश्य की प्राप्ति सम्भव हो पाती है। मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, उड्डियान बन्ध, महाबन्ध इसमें सहायक होते हैं।

(4) शिव-शक्ति का संयोग कराना — मुद्राओं के माध्यम से अधोगामी प्राण प्रवाह ऊर्ध्वगामी होता है। नाड़ियों में प्राण का प्रवाह मुद्राओं के माध्यम से इच्छानुसार करने पर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करना सम्भव हो जाता है। जागृत होने पर यह शक्ति सहस्रार में स्थित पुरुषतत्त्व शिव से मिलने के लिये ऊर्ध्वगामी होकर प्रबलता से तीव्र वेग से शिव से मिलती है। यह योग की परम स्थिति है। मुद्राओं का अभ्यास इसमें सहायक होता है।

अतः हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार विशेष विधि द्वारा हम अपने भीतर में उत्पन्न संवेदनाओं को तीव्र बनाते हैं, उनका विस्तार करते हैं और विस्तार के बाद अपने आप को उसमें लीन कर लेते हैं। ठीक उसी प्रकार से मुद्राओं द्वारा भी हम अपने शरीर का प्रयोग

करके अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, एवं मनोमय कोश की संवेदनाओं को तीव्र बनाकर अपने को उनके भीतर ले जाते हैं। इसमें मुद्रा एवं बन्ध बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।

● **बहुविकल्पीय प्रश्न –**

- (1) यौगिक अर्थ में मुद्रा से तात्पर्य है।
 (अ) रुपये-पैसे के रूप में (ब) नृत्यों में हाथों की विशेष अवस्था
 (स) चित्त की विशेष भाव भंगिमा (द) उपरोक्त सभी
- (2) हठप्रदीपिका में कितने मुद्राओं का वर्णन मिलता है।
 (अ) नौ (ब) आठ
 (स) सात (द) दस
- (3) घेरण्ड संहिता के अनुसार मुद्राओं के प्रकार हैं।
 (अ) 25 (ब) 16
 (स) 15 (द) 32
- (4) शिव संहिता नामक हठयोग के ग्रन्थ में कितनी मुद्राओं का वर्णन मिलता है।
 (अ) 12 (ब) 11
 (स) 14 (द) 10
- (5) मुद्रा एवं बन्धों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है।
 (अ) शारीरिक शक्ति के लिए (ब) कुण्डलिनी शक्ति का जागरण
 (स) मानसिक व बौद्धिक एकाग्रता के लिए (द) उपरोक्त सभी

● **रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –**

- (1) घेरण्ड संहिता के अध्याय में मुद्रा एवं बन्धों के उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है।
- (2) हठप्रदीपिका में तृतीय अध्याय के श्लोक में मुद्राओं का वर्णन मिलता है।
- (3) उच्च स्तर के योग अभ्यासी को नाड़ी की अनुभूति होती है।
- (4) मुद्रा का अभ्यास व से भी उच्च अभ्यास है।

सत्य और असत्य को चिन्हित करें –

- (1) आसन, प्राणायाम एवं बन्ध की सम्मिलित वह विशिष्ट स्थिति जिसके द्वारा आध्यात्मिक शक्ति का जागरण सम्भव हो, मुद्रा कहते हैं। (.....)
- (2) अभ्यास की दृष्टि से तीन मुद्राओं (प्राणायामिक, अप्रमाणिक व हस्तमुद्रा) का वर्णन मिलता है। (.....)
- (3) “जिसके द्वारा शरीर के अंग विशेष को बाँधकर बहों से आने जाने वाली संवेदनाओं को रोक कर लक्ष्य विशेष की ओर प्रवाहित किया जाता है, उसे बन्ध कहते हैं।” (.....)
- (4) प्राणायाम व मुद्रा दोनों के अभ्यास में बन्ध का प्रयोग नहीं किया जाता है। (.....)
- (5) हस्तमुद्रायें प्राणतत्त्व और पंचतत्त्वों को प्रभावित करती हैं। (.....)

3.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने मुद्रा एवं बन्ध के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की। इकाई के समस्त उद्देश्यों की पूर्ति आपने प्रस्तुत पाठ्य-सामग्री को पढ़कर अवश्य प्राप्त की होगी। आगामी इकाई में वर्णित बन्धों एवं मुद्राओं की विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे। अभी आपने केवल इनके अर्थ को एवं उद्देश्य को जाना, और हठयोग में ये किस प्रकार से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं इसके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की।

प्रस्तुत इकाई से हमें स्पष्ट होता है कि हठयोग विद्या में संसार और शरीर को माध्यम बनाकर अपने भीतर प्रवेश किया जाता है, जिसमें मुद्रा और बन्ध एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनके अभाव में हठयोग की पूर्णता सम्भव न हो सकेगी।

3.8 शब्दावली

• दृढ़ता	—	मजबूती
• जीवन्त	—	प्राणवान (जीवित)
• विक्षिप्त	—	चंचल, अस्थिर
• सुषुप्त	—	सोई हुई
• जिज्ञासु	—	जानने की इच्छा रखने वाला
• अंतरंग	—	अन्दर के
• संकुचित करना	—	सिकोड़ना
• प्रसारण	—	फैलाव
• चिबुक	—	ढोड़ी
• बाह्य	—	बाहर
• ऊर्ध्वगामी	—	ऊपर की ओर जाने वाली
• अधोगामी	—	नीचे की ओर जाने वाली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

• बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर —

- (1). स (2). द (3). ब (4). ब (5). ब

• रिक्त स्थानों के उत्तर —

- (1) तृतीय (2) छठे (3) सुषुम्ना (4) आसन व प्राणायाम

• सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर —

- (1) सत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) सत्य

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- | | | |
|-------------------------------|---|--------------------------|
| 1. घेरण्ड संहिता | — | स्वामी निरञ्जनानन्द |
| 2. हठप्रदीपिका | — | कुवल्यानन्द |
| 3. हठयोग प्रदीपिका | — | स्वामी मुक्तिबोधानन्द |
| 4. आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध | — | स्वामी सत्यानन्द सरस्वती |

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मुद्रा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसका विस्तृत वर्णन करें।
2. बन्ध के अर्थ को समझाते हुए इसे परिभाषित करें।
3. मुद्राओं का सन्दर्भ सहित वर्णन करें।
4. मुद्रा एवं बन्ध क्या हैं? इनका विस्तृत परिचय दें।
5. मुद्राओं के उद्देश्यों को स्पष्ट करें।
6. हठयोग में मुद्राओं की भूमिका पर विस्तार से प्रकाश डालें।

इकाई 4 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित मुद्राओं की विधि, सावधानियाँ एवं लाभ मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, उड्डियानबन्ध: महाबन्ध

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मूलबन्ध – नामकरण, संदर्भ ग्रन्थ, विधि, सावधानियाँ, लाभ

4.4 जालन्धर बन्ध – नामकरण, संदर्भ ग्रन्थ, विधि, सावधानियाँ, लाभ

4.5 उड्डियानबन्ध – नामकरण, संदर्भ ग्रन्थ, विधि, सावधानियाँ, लाभ

4.6 महाबन्ध – नामकरण, संदर्भ ग्रन्थ, विधि, सावधानियाँ, लाभ

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

हठयोग में बन्धों का विशेष महत्व है। आसन प्राणायाम मुद्रा आदि सभी क्रियाओं में बांधों का उपयोग किया जाता है। हठयोग के अभ्यास में उच्च अवस्था को प्राप्त करने के लिए बांधों का उपयोग आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत इकाई में पाठक को इसकी विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान पायेंगे –

- मूलबन्ध उड्डियानबन्ध जालन्धर बन्ध की विधि
- तीनों बन्ध के लाभ के बारे में
- महाबन्ध के अर्थ को
- महाबन्ध के विधि लाभ के बारे में,
- बन्धों के अभ्यास में ध्यान रखने वाली बातों को।

4.3 मूलबन्ध

सामान्यतः प्रारम्भ में विषय से अपरिचित व्यक्ति के मन में विषय को लेकर बहुत सी शंकाएँ उत्पन्न होती हैं, जिनका समाधान वो जल्द ही चाहता है। प्रस्तुत पाठ्य सामग्री को पढ़ने के बाद हर स्तर के व्यक्ति की शंकाओं का समाधान सम्भव होगा वह जान पायेगा कि –

- मूलबन्ध का अर्थ क्या होता है ?
- मूलबन्ध का अभ्यास कैसे किया जाता है ?
- मूलबन्ध के लाभ क्या हैं ?
- मूलबन्ध को करते समय किन सावधानियों का पालन करना चाहिये ?

4.3.1 नामकरण — मूलबन्ध दो शब्दों से मिलकर बना है मूल + बन्ध मूल = आधार या जड़ बन्ध = बांधना। जिस बन्ध में शरीर के जड़ या आधार वाले भाग को बाँधा जाता है उसे मूल बन्ध कहते हैं।

4.3.2 संदर्भ ग्रन्थ — हठप्रदीपिका के द्वितीय अध्याय के 60 – 62 श्लोक में मूलबन्ध की विधि को इस प्रकार से समझाया गया है।

4.3.3 विधि — एड़ी से सीवनी को दबाकर गुदा का आकुञ्चन करना चाहिये। फिर अपानवायु के ऊपर की ओर खींच कर रखने से मूलबन्ध होता है, स्वाभाविक रूप से निम्नगामी अपान वायु को आकुञ्चन के द्वारा बलपूर्वक जो ऊपर की ओर ले जाता है, उसे योगियो ने मूलबन्ध कहा है। एड़ी से गुदा को दबाकर बारम्बार बलपूर्वक योनि का आकुञ्चन करे इससे वायु ऊपर की ओर चला जाता है।

विधि की प्रथम स्तर की सरल व्याख्या — सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाते हैं। जैसे पद्मासन, स्वास्तिकासन, सिद्धासन, मूलबन्ध में प्रमुखता सिद्धासन को दी जाती है। क्योंकि इसमें एड़ी का दबाव सीधे मूल आधार पर पड़ता है।

निश्चित आसन पर बैठने के बाद दोनों हाथों को घुटनों के ऊपर ज्ञान मुद्रा या चिनमुद्रा में रखते हैं। शरीर पूर्णतः शिथिल एवं स्थिर अवस्था में रहेगा। इसके पश्चात् अपना सारा ध्यान एड़ी से मूलाधार (पेरिनियम) में पड़ने वाले दबाव पर लगाते हैं। साथ ही गुदा और योनि वाले भाग की मांसपेशियों को संकुचित करके ऊपर की ओर खींचते हैं। इस भाग में भीतर की ओर खींचाव बनाकर फिर मांसपेशियों को ढीला छोड़े अपनी क्षमतानुसार जब तक आप आराम से बिना किसी तनाव व परेशानी के इस क्रिया को करने में सक्षम हो इसे लयबद्ध तरीके से करत रहे, एक बार में अधिकतम 20 आवृत्ति करें।

विधि की द्वितीय स्तर की सरल व्याख्या — प्रथम स्तर के अभ्यास में पूर्णतः प्राप्त होने पर इस अभ्यास को थोड़ा और ऊँचे स्तर की ओर बढ़ाएंगे। इस विधि में योनि और गुदा की संकुचित की गई मांसपेशियों के संकुचन को कुछ देर तक रोककर रखेंगे, उस अवस्था में क्षमतानुसार बनें रहेंगे। श्वास की गति को सामान्य रखेंगे। ली जाने वाली श्वास और छोड़ी जाने वाली श्वास में कोई परिवर्तन नहीं करेंगे। शरीर पूरी तरह से तनाव मुक्त रहेगा। शरीर में अन्यत्र अंगों में किसी प्रकार का कोई भी मांसपेशिय तनाव उत्पन्न न करें। केवल पेरिनियम वाले भाग की मांसपेशियों का संकुचन नियन्त्रण में रहेगा।

क्षमतानुसार संकुचन की स्थिति को बनाए रखने के बाद धीरे से मांसपेशियों को ढीला छोड़ें। इसके बाद कुछ देर विश्राम करें। 10 बार तक इस प्रक्रिया को आप दोहरा सकते हैं।

विधि की तृतीय स्तर की सरल व्याख्या — मूलबन्ध अभ्यास की द्वितीय स्तर में पूर्णता प्राप्त करने के बाद अभ्यासी अभ्यास में और आगे बढ़ता है। इसके लिये ध्यानात्मक आसन में दोनों हाथ ज्ञानमुद्रा या चिनमुद्रा में घुटनों के ऊपर रखते हैं। आँखें बन्द रहेगी। इसके बाद अपना सारा पेरिनियम वाले भाग में ले जाते हैं। फिर नाक से श्वास के भीतर की ओर ले फिर पेरिनियम भाग की मांसपेशियों की संकुचित कर ऊपर की ओर खींचते हैं। क्षमतानुसार इस स्थिति में रुकते हैं। इसके पश्चात् श्वास की छोड़ते हुए मांस पेशियों को भी ढीला छोड़ते हैं। 10 बार तक इस अभ्यास को दोहराया जा सकता है।

जालन्धर बन्ध के साथ मूलबन्ध का अभ्यास — मूलबन्ध का दीर्घ अभ्यास होने पर इस क्रिया को जालन्धर बन्ध के साथ भी किया जा सकता है। जिसकी विधि इस प्रकार से है। सर्वप्रथम उचित शारीरिक अवस्था ले फिर नाक से श्वास को भीतर की ओर ले और रोके।

जालन्धर बन्ध लगाये फिर मूलबन्ध अभ्यास के तृतीय स्तर को करे। क्षमतानुसार रूके फिर विपरित क्रम में वापस आयेगे। सर्वप्रथम मूलबन्ध छोड़ेगे फिर जालन्धर बन्ध फिर श्वास को नाक से बाहर निकालेंगे। फिर शरीर को शिथिल कर विश्राम अवस्था में आयेगे।

मूलबन्ध का अभ्यास मूलाधार चक्र पर सीधा प्रभाव डालता है। अभ्यास के दौरान अभ्यासी की पूर्ण सजगता इसी स्थान पर होने से लाभ अधिक मिलता है साथ ही अभ्यास भी सही होता है।

4.3.4 सावधानियाँ — मूलबन्ध के अभ्यास से हमें जितना लाभ प्रदान करता है। उसी के साथ — साथ इसके अभ्यास के दौरान कुछ सावधानियाँ भी अभ्यासी को ध्यान में रखनी चाहिये। अन्यथा लाभ के स्थान में हानि भी हो सकती है। अभ्यास के दौरान ध्यान रखने योग्य बातें इस प्रकार से हैं —

- मूलबन्ध का अभ्यास प्राणायाम के अभ्यास के बाद ही करना चाहिये।
- किताबों में पढ़कर या सुनकर अभ्यास नहीं करना चाहिये।
- जानकार व्यक्ति के सम्पर्क में रहकर अभ्यास करना चाहिये।
- अभ्यास क्रमबन्ध व धीरे-धीरे करना चाहिये।

4.3.5 लाभ — मूलबन्ध के अभ्यास में गुदा और प्रजनन अंग से सम्बन्धित मांसपेशियों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। साथ ही इस स्थान से अनेक नाड़िया शुरू होकर सीधे मस्तिष्क तक जाती है। अभ्यास के दौरान विभिन्न संवेदनाएँ इस भाग पर उत्पन्न होती हैं जिनके प्रति सजगता हमें ज्यादा लाभ प्रदान करने में सक्षम होती है। मूलबन्ध द्वारा हमें शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक तीनों लाभ प्राप्त होते हैं जो कि इस प्रकार से हैं।

शारीरिक लाभ — मूलबन्ध उत्सर्जन तन्त्र एवं प्रजन्नांगों को सीधा प्रभावित करता है। इस प्रक्रिया में होने वाला आकुंचन = प्रकुंचन इन्हीं की मांसपेशियों को सीधा प्रभावित करती है। कब्ज, अपचन, की समस्या दूर होती है। बवासीर से लाभ मिलता है। आँते सक्रियता से कार्य करती है। गठियों, दमा, ब्रकाइटिस में लाभदायक है। यौन रोगों के उपचार में मूलबन्ध का अभ्यास लाभकारी है। मूलबन्ध के अभ्यास मलमूत्र की अल्पता होती है। वह व्यक्ति की युवावस्था को प्राप्त करता है।

मानसिक लाभ — मूलबन्ध का अभ्यास ऊर्जा मुक्त करने में सहायक है इससे इसका प्रभाव मानसिक और मनोकायिक रोगों पर भी पड़ता है। विषाद की समस्या में लाभदायक है। इसका अन्तः स्रावी ग्रन्थियों में भी प्रभाव पड़ता है। यह क्रिया मस्तिष्क को भी सीधा प्रभावित करती है।

आध्यात्मिक लाभ — मूलाधार चक्र की जागृति में सहायक है। ब्रह्मचर्य पालन एवं वार्यशक्ति वृद्धि में सहायक, कुण्डलिनी शक्ति का जागरण इस प्रक्रिया से सम्भव है। मूलबन्ध का अभ्यास प्राणवायु और अपान वायु को मिलाने में सहायक होता है। साथ ही इस प्रक्रिया द्वारा नाद और बिन्दु को एक किया जा सकता है। यह अवस्था योग की उच्च अवस्था होती है।

मूलबन्ध के अभ्यास से मस्तिष्क की सक्रियता बढ़ती है। साथ ही एकाग्रता, स्थिरता जैसे — 2 बढ़ती जाती है। अभ्यासी के भीतर आध्यात्मिक की प्रवृत्ति और बढ़ने लगती है। वह लौकिक से अलौकिक वृत्तियों की ओर अग्रसित होने लगता है।

4.4 जालन्धर बन्ध

हठयोग में तीन प्रकार के बन्धों का वर्णन किया गया है। जिनमें से एक जालन्धर बन्ध है। इस बन्ध का प्रयोग सामान्यतः प्राणायाम के साथ भी किया जाता है। जालन्धर बन्ध के बारे में विस्तृत जानकारी इस प्रकार से है –

4.4.1 नामकरण – जालन्धर बन्ध तीन शब्दों से मिलकर बना है। जाल + धर + बन्ध। जाल = गला, धर = धारण करना या ऊपर की ओर खिंचना, बन्ध = बाँधना अर्थात् इसमें गले में उपस्थित नाड़ियों को दबाव बनाकर ऊपर की ओर खिंचाव देते हुए बाँध देने के कारण इसे जालन्धर बन्ध कहते हैं। इसमें वायु का आवागमन रुक जाता है। साथ ही चन्द्र मण्डल से टपकने वाले सोमरस को नाभिमण्डल में गिरकर नष्ट होने से भी रोकता है।

4.4.2 संदर्भ ग्रन्थ – हठप्रदीपिक के 69-75 श्लोक तक हमें जालन्धर बन्ध का वर्णन मिलता है। जिसमें इसकी विधि, लाभ का विस्तृत वर्णन हैं। अब हम इसके नामकरण पर प्रकाश डालते हैं –

4.4.3 विधि – त्रिबन्धों में से ज्यादा प्रयोग में आने वाली जालन्धर बन्ध की विधि इस प्रकार से है – सर्वप्रथम किसी भी ध्यानत्मक आसन में बैठते हैं। पदमासन, सिद्धासन या स्वास्तिकासन में से सुविधानुसार आसन में स्थिर व निश्चल अवस्था में बैठने के बाद सहजता से आँखों को बन्द करते हैं। दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा में या हथेलियों को घुटनों के ऊपर उल्टा करके रखते हैं। फिर श्वास प्रश्वास को सामान्य करें। अपनी श्वासों के प्रति सजगता बनाते हैं, अपना सारा ध्यान श्वास भीतर जाने और बाहर जाने की गति पर एकाग्र करते हैं। फिर धीरे-धीरे श्वास को भीतर की ओर लेते हैं, भीतर ही रोककर ढीड़ी को कण्ठकूप से लगते हैं। इसी स्थिति में कुछ देर क्षमतानुसार रुकें रहते हैं। फिर गर्दन को सीधा करके श्वास को नासिकाद्वार से बाहर निकालते हैं। फिर कुछ देर शान्त बैठते हैं, फिर पुनः प्रारम्भ करते हैं। जालन्धर बन्ध का अभ्यास श्वास को बाहर निकालकर भी किया जाता है। 10 बार तक इस अभ्यास को किया जा सकता है। जालन्धर बन्ध का अभ्यास करते समय एकाग्रता कण्ठकूप (विशुद्धिचक्र) पर बनानी चाहिये।

4.4.4 सावधानियाँ – इस अभ्यास में निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये – सरवाइकल स्पोण्डिलाइटिस, उच्चरक्तचाप से पीडित व्यक्ति इसका अभ्यास न करे। हृदय रोगी भी इस अभ्यास को न करे।

4.4.5 लाभ – जालन्धर बन्ध के अभ्यास से जब निरन्तर कण्ठकूप पर ढोड़ी द्वारा दबाव पड़ता है, तब निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं – कष्ट सम्बन्धी रोग दूर होत है। थॉराइड-पैराथॉयराइड ग्रंथियों पर दबाव पड़ने के कारण वे अपना कार्य सुचारु रूप से करती हैं। जालन्धर बन्ध द्वारा मस्तिष्क से टपकने वाले अमृतरस (सोमरस) की रक्षा होती है। जिसके कारण अभ्यासी बुढ़ापा और मृत्यु को भी दूर करता है। यह अभ्यास मानसिक तनाव, चिंता, क्रोध को दूर करता है। ध्यान से पूर्व इसका अभ्यास करने से लाभ मिलता है। जालन्धर बन्ध में पड़ने वाला दबाव प्राणशक्ति के संचार को बढ़ाता है। टॉन्सिल, कफ, के निवारण में सहायक है। स्वर ग्रन्थियों को प्रभावित करता है।

4.5 उड्डियान बन्ध

4.5.1 नामकरण – उड्डियान बन्ध दो शब्दों से मिलकर बना है, उड्डियान + बन्ध। उड्डियान = ऊपर उठाना या उड़ना, बन्ध = बाँधना। उड्डियान बन्ध में हम पेट की मांसपेशियों को भीतर की ओर दबाकर ऊपर की ओर खींचते हैं। साथ ही सुषुम्ना नाड़ी में होने वाले प्राण प्रवाह को ऊपर उठाया जाता है। प्राण रूप में सुषुम्ना के भीतर स्थित पक्षी निरन्तर उड़ान भरता रहता है। इसलिये इसे उड्डियान बन्ध कहते हैं।

4.5.2 संदर्भ ग्रन्थ — हठप्रदीपिक के तृतीय अध्याय के 54-59 तक उड्डियान बन्ध का वर्णन मिलता है।

4.5.3 विधि — प्रथम विधि सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठते हैं पद्मासन, सिद्धासन या स्वास्तिकासन। शरीर शिथिल एवं दोनो हथेली घुटनो ऊपर रखते हैं। नासिक से धीरे-धीरे श्वास को भीतर लेते हुऐ फेफड़ो को वायु से भर देते हैं। फिर मुँह से पूरी श्वास को बाहर निकालकर पेट की मांसपेशियों को पीठ से चिपका देते हैं। इसके बाद डायफ्राम को झूठी श्वास लेते हुए ऊपर की ओर खींचते हैं। ठोड़ी को कण्ठकूप से लगा देते हैं। ऐसी स्थिति में हाथो से घुटनो के ऊपर दबाव बना रहेगा। बाह्य कुम्भक (श्वास को बाहर रोककर) के साथ क्षमतानुसार रुके रहे। इसके पश्चात् गर्दन को सीधा करके श्वास को धीरे-धीरे भीतर की ओर ले तथा सामान्य स्थिति में वापस आ जायेंगे। इस प्रकार से 5 बार तक इसका अभ्यास किया जा सकता है।

द्वितीय विधि — उड्डियानबन्ध को खड़े होकर भी किया जा सकता है। जिसकी विधि इस प्रकार से है। सर्वप्रथम दोनो पैरो के बीच कन्धो के बराबर दूरी बनायेंगे। दोनो हाथो को घुटनो के ऊपर रखेंगे। इस प्रकार शारीरिक स्थिति के बाद उपरोक्त विधि के अनुरूप ही प्रक्रिया होगी। अन्तिम स्थिति में विश्राम करेंगे। विश्राम खड़े होकर या लेट कर दोनो तरह से आवश्यकतानुसार किया जा सकता है।

4.5.4 सावधानियाँ — उड्डियान बन्ध का अभ्यास करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए। गर्भवती महिलाएँ इस अभ्यास को ना करें। पेट में अल्सर आदि घावों से पीड़ित व्यक्ति इस अभ्यास को न करें। हृदय रोगियों के लिए यह अभ्यास वर्जित है। खाली पेट ही करें। आँतों की समस्या वाले व्यक्ति भी इस अभ्यास को न करें।

4.5.5 लाभ — उड्डियानबन्ध से अभ्यासी को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होता है — यहा बन्ध पाचन संस्थान की प्रक्रिया को सक्रियता प्रदान करता है। पाचन सम्बन्धी समस्त रोगों को दूर करने में सहायक है कब्ज पेट में कीड़े, अर्जीण अपच आदि समस्याओं को दूर करता है। आते सूचारु रूप से सक्रिय हो जाती है। श्वसन तन्त्र के सभी अंग सक्रिय होते हैं। इनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। हृदय की भी मसाज होने से इसकी कार्यक्षमता में भी वृद्धि होती है। आलस्य भी दूर होता है। मणिपूर चक्र की जाग्रति होती है। मृत्यु रूपी हाथी के उड्डियानबन्ध सिंह के समान होता है।

4.6 महाबन्ध

महाबन्ध त्रिबन्ध की उच्च अवस्था है। जिसके अभ्यास से अभ्यासी एक साथ त्रिबन्धों का लाभ प्राप्त करने में सक्षम होता है। हठयोग में महाबन्ध का विशेष महत्व है।

4.6.1 नामकरण — जब तीनों बन्धों (मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, एवं उड्डियान बन्ध) को एक साथ लगाया जाता है, तो उसे महाबन्ध कहा जाता है। हर बन्ध में जब अभ्यासी की दक्षता हो जाती है तब इसके पश्चात् ही वह महाबन्ध का अभ्यास करने के लिए तैयार हो जाता है।

4.6.2 संदर्भ ग्रन्थ — हठप्रदीपिका के तीसरे अध्याय के 18 – 23 श्लोक तक महाबन्ध का वर्णन किया गया है।

4.6.3 विधि — सर्वप्रथम किसी भी आध्यानात्मक आसन में बैठते हैं, सिद्धासन ज्यादा लाभकारी होता है। क्योंकि इस आसन का प्रभाव सीधे सीवनी में पड़ने से बन्ध में लाभ मिलता है। दोनो हथेलियों को घुटनो के ऊपर रखेंगे। आखे सहजता से बन्द कर शरीर

को शिथिल करेंगे। अपनी एकाग्रता श्वास-प्रश्वास की गति पर बनायेंगे श्वासो की गति सामान्य करेंगे। इसके पश्चात् धीरे-धीरे नासाद्वार से श्वास को भीतर की ओर लेंगे। तत्पश्चात् श्वास को मूह से बाहर की ओर निकालकर बाहर ही रोक देंगे। क्रमशः मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध एवं जालन्धर बन्ध लगायेंगे। आँखें बन्द रखकर चेतना को मूलाधार, मणिपूर, विशुद्धि चक्रों पर क्रमबद्ध लगायेंगे। क्षमतानुसार श्वास को रोकने के पश्चात् गर्दन को सीधा कर धीरे-धीरे श्वास को भीतर लेंगे फिर उड्डियान बन्ध छोड़ेंगे। इसके बाद मूलबन्ध को छोड़कर सामान्य स्थिति में आयेगे। श्वास-प्रश्वास सामान्य करने के पश्चात् विश्राम करेंगे। महाबन्ध की 5 आवृत्ति प्रारम्भ की जा सकती है। फिर धीरे-धीरे इसे 10 तक बढ़ाया जा सकता है।

4.6.4 सावधानियाँ — महाबन्ध के अभ्यास में कुछ सावधानियों का विशेष ध्यान रखना जरूरी होता है जो कि इस प्रकार से हैं— महाबन्ध का अभ्यास मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध और उड्डियान बन्ध में पूर्णता प्राप्त होने के बाद ही करना चाहिये। हृदय रोग एवं उच्च रक्तचाप का निम्न रक्तचाप से ग्रसित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिये। हर्निया, अल्सर, आँतों की सूजन से पीड़ित व्यक्ति भी इसका अभ्यास न करे। गर्भवती महिलाओं के लिये यह अभ्यास वर्जित है। चूँकि इस अभ्यास में उपरोक्त वर्णित तीनों बन्धों को किया जाता है इसलिये इनमें बताई गई समस्त सावधानियों को महाबन्ध में भी ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

4.6.5 लाभ — महाबन्ध से मूलबन्ध उड्डियान बन्ध एवं जालन्धरबन्ध तीनों की लाभ प्राप्त होते हैं। सहश्रार से टपकने वाले सोमरस का भी पूरा लाभ महाबन्ध से प्राप्त होता है। विशुद्धि चक्र, मणिपूर चक्र और मूलाधार चक्र की जागृति में भी से सहायक है। महाबन्ध का अभ्यास काल के बन्धन से मुक्त करने में सहायक है। मन को एकाग्र करने मानसिक शान्ति प्राप्त कराने में यह क्रिया सहायक है। ध्यान से पूर्व इसका अभ्यास लाभदायक होता है।

अभ्यास प्रश्न

• बहुविकल्पीय प्रश्न —

- (1) निम्न में से मूलबन्ध का सम्बन्ध है?

(अ) उदर प्रदेश से	(ब) सीवनी प्रदेश से
(स) कण्ठ प्रदेश से	(द) तीनों में से कोई नहीं।
- (2) हठप्रदीपिका में जालन्धर बन्ध का वर्णन कौन से श्लोक में मिलता है?

(अ) 59 से 65	(ब) 65 से 69
(स) 69 से 75	(द) 75 से 79।
- (3) महाबन्ध लगाने का सही क्रम क्या है?

(अ) जालन्धरबन्ध, उड्डियानबन्ध, मूलबन्ध	(ब) जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध
(स) मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध, जालन्धरबन्ध	(द) उड्डियानबन्ध, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध।
- (4) उड्डियानबन्ध के अभ्यास से सबसे अधिक प्रभाव किस चक्र पर पड़ता है?

(अ) मणिपूर चक्र	(ब) अनाहत चक्र
(स) मूलाधार चक्र	(द) विशुद्धि चक्र।
- (5) महाबन्ध का अभ्यास उपरोक्त में से किसे नहीं करना चाहिए?

(अ) हर्निया व अल्सर रोगी को	(ब) हृदय रोग व उच्च रक्तचाप के रोग में
(स) गर्भवती महिलाओं को	(द) उपरोक्त सभी को।

● रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –

- (1) महाबन्ध का अभ्यास कुम्भक में किया जाता है।
- (2) तीनों बन्धों का सम्मिलित अभ्यास कहलाता है।
- (3) हठप्रदीपिका के अध्याय में उड्डियान बन्ध का वर्णन मिलता है।
- (4) मूलबन्ध के अभ्यास में और से सम्बन्धित मॉसपेशियों पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

● सत्य और असत्य को चिन्हित करें –

- (1) महाबन्ध का अभ्यास तीनों बन्धों के साथ नहीं किया जाता। (.....)
- (2) उड्डियान बन्ध का सम्बन्ध उदर प्रदेश से है। (.....)
- (3) महाबन्ध का अभ्यास हृदय रोगियों तथा उच्च रक्तचाप के रोगियों के लिये लाभदायक है। (.....)
- (4) जालन्धर बन्ध का अभ्यास विशुद्धि चक्र को प्रभावित करता है। (.....)

4.7 सारांश –

उपरोक्त वर्णित त्रिबन्धों के अध्ययन से हमें इनकी महत्ता का पता चलता है साथ ही हम जान पाते हैं कि इनका अभ्यास योग में आगे बढ़ने वाले अभ्यासी के लिये कितना महत्वपूर्ण है। यहाँ त्रिबन्धों एवं महाबन्ध की विधि को बहुत ही सरल भाषा में वर्णित किया गया है। त्रिबन्धों एवं महाबन्ध से होने वाले लाभों को विस्तार से समझाया गया है ताकि क्रिया का प्रभाव क्या होता है इसे समझा जा सके और इसकी महत्ता से परिचित हो सके। साथ ही इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण अभ्यास ध्यान रखने योग्य बातें, जिन्हें हम सावधानियाँ कहते हैं। उन्हें भी समझाया गया है। अभ्यास में यदि सावधानियाँ का ध्यान न रखा जाए तो लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावना अधिक हो जाती है। इसलिये उचित लाभ हेतु इनका विशेष ध्यान रखा जाता है।

उपरोक्त वर्णित समस्त क्रिया विधि से परिचित होकर सावधानियों के साथ समस्त लाभों को प्राप्त किया जा सकता है। योगाभ्यास में इनका विशेष महत्व है।

4.8 शब्दावली

- पेरिनियम = सीवनी।
- संकुचन = सिकुड़ना।
- विपरीत = उल्टा।
- श्वास प्रश्वास = नाक द्वारा भीतर जाने वाली हवा व बाहर आने वाली हवा
- सक्षम = समर्थ।
- अल्पता = न्यूनता।
- कुण्डलिनी शक्ति = प्रचण्ड ऊर्जा शक्ति, जो सर्प के समान 3, 1/2 फेरे लगाकर अपनी पूँछ को अपने मुख से दबाकर मूलाधार चक्र में सुषुप्तावस्था में पड़ी होती है।
- लौकिक = सांसारिक।
- अलौकिक = संसार से परे।

- सुषुम्ना नाड़ी = यह इड़ा, पिंगला से भी सुक्ष्म नाड़ी होती है, इन दोनों के सम होने पर ही यह जागृत होती है।
- त्रिबन्ध = मूलबन्ध। (जालन्धर बन्ध एवं उड्डियान बन्ध इन तीनों को त्रिबन्ध के नाम से पुकारा जाता है)

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

- बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर –

(1). ब (2). स (3). अ (4). द

- रिक्त स्थानों के उत्तर –

(1). बाहय (2). महाबन्ध (3). तृतीय (4). गुदा, प्रजनन

- सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –

(1). असत्य (2). सत्य (3). असत्य (4). सत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हठप्रदीपिका – स्वात्माराम सूरी,
2. घरेण्ड संहिता – स्वामी निरंजना नन्द,
3. आसन प्राणायाम मुद्राबन्ध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मूलबन्ध के अर्थ को समझाते हुए, इसके लाभ तथा सावधानियों का वर्णन करो।
2. जालन्धरबन्ध के अर्थ को बताते हुए इसके लाभ व सावधानियों का वर्णन करो।
3. उड्डियान बन्ध से आप क्या समझते हैं इसका विधि लाभ व सावधानियों को समझाए।
4. हठयोग में वर्णित महाबन्ध की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए इसका विस्तृत वर्णन करें।

इकाई 5 — हठयोग प्रदीपिका में वर्णित मुद्राओं की विधि सावधानियां व लाभ— महामुद्रा, महावेध, खेचरी मुद्रा

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 महामुद्रा — नामकरण, सन्दर्भ ग्रन्थ, विधि, सावधानियाँ, लाभ

17.4 महावेधमुद्रा — नामकरण, सन्दर्भ ग्रन्थ, विधि, सावधानिया, लाभ

17.5 खेचरी मुद्रा — नामकरण, सन्दर्भ ग्रन्थ, विधि, सावधानियाँ, लाभ

17.6 सारंश

17.7 शब्दावली

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना —

हठयोग में मुद्राओं का अभ्यास साधक को दिव्यशक्ति सम्पन्न बनाने में बहुत ही सहायक होता है। प्राणशक्ति का उच्च प्रवाह साधक की सुषुप्त क्षमताओं को जाग्रत करता है। जिसके फलस्वरूप साधक सामान्य से विशिष्टता की ओर अग्रसित होता चला जाता है। हठयोग के ग्रन्थों में अनेकों मुद्राओं की चर्चा मिलती है जो योग में आगे बढ़ने वाले जिज्ञासुओं को उसके लक्ष्य तक पहुंचाने में सहायक होती है। जिनमें से हठप्रदीपिका में 10 मुद्राओं का एवं घरेण्ड संहिता में 24 मुद्राओं का वर्णन मिलता है। जिनमें से निम्नलिखित 3 मुद्राओं का वर्णन इस प्रकार से है —

(1) महामुद्रा

(2) महावेधमुद्रा

(3) खेचरी मुद्रा

17.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान पायेंगे महामुद्रा महावेधमुद्रा एवं खेचरी मुद्रा को किस तरह किया जाता है। उपरोक्त मुद्राओं के अभ्यास से क्या लाभ हैं। उपरोक्त मुद्राओं को करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये।

17.3 महामुद्रा

17.3.1 नामकरण — हठयोग में वर्णित समस्त मुद्राओं में श्रेष्ठ होने के कारण इसे महामुद्रा कहा जाता है। महाक्लेश आदि दोष तथा मृत्यु के भय को दूर करने की क्षमता रखने के कारण ही इसे महामुद्रा कहते हैं।

साथ ही महामुद्रा दो शब्दों से मिलकर बनी है—: महा + मुद्रा। महा का अर्थ उच्चतम से लगाया जाता है और मुद्रा का अर्थ मानसिक वृत्ति से। इस प्रकार मानव चेतना को उच्चतम शिखर में गमन करने के कारण इसे महामुद्रा कहते हैं।

17.3.2 सन्दर्भ ग्रन्थ — हठयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ हठप्रदीपिका में तीसरे अध्याय के 9-17 श्लोक तक महामुद्रा का वर्णन किया गया है।

17.3.3 विधि — हठप्रदीपिका में महामुद्रा की विधि इस प्रकार से बताई गई है —: बायें पाँव की एड़ी से सीवनी को दबायें तथा दाहिने पाँव को फैलाकर उसे दोनों हाथों से दृढ़ता से पकड़ें। तब जालन्धर-बन्ध करके वायु को ऊपर की ओर ले जाकर कुम्भक करें। जिस

प्रकार डंडे की मार खाकर सांप डंडे की आकृति वाला हो जाता है अर्थात् सीधा हो जाता है उसी प्रकार महामुद्रा करने से कुंडलिनी शक्ति सहसा सीधी हो जाती है।

इसके फलस्वरूप दोनों नासापुटों से सम्बन्धित क्रियाशीलता समाप्त प्रायः हो जाती है। इसके बाद साधक को धीरे-धीरे श्वास छोड़ना चाहिये। कभी भी वेग से ना छोड़ें। महासिद्धों द्वारा बताई गई यह महामुद्रा है।

घेरण्ड संहिता के तीसरे अध्याय के 29-31 श्लोक में भी इस मुद्रा का वर्णन मिलता है जो इस प्रकार से है—

बाई एड़ी से गुदा प्रदेश को दबाएं और दाहिने पैर को फैलाकर उसकी अंगुलियों को हाथ से पकड़े और कंठ को सिकोड़कर भोहो के मध्य पर दृष्टि लगाए रखें। यह महामुद्रा कहलाती है। इसके अभ्यास से कफ, कब्ज, प्लीहा वृद्धि, जीर्ण ज्वर तथा अन्य रोग ठीक होते हैं और शरीर स्वास्थ्य प्राप्त करता है।

उपरोक्त वर्णित विधि को सरल रूप में इस प्रकार से समझा जा सकता है —

- सर्वप्रथम दोनों पैरों को मिलाकर सीधे सामने की ओर सीधा रखकर दोनों हाथों को जंघा के बगल में रखकर दण्डासन की स्थिति में बैठ जाते हैं।
- इसके पश्चात् हाथ की सहायता से बाँयें पैर के पंजे को पकड़के उसकी एड़ी को सीवनी (पेरीनियम) में लगायेंगे।
- दायाँ पैर सीधा सामने की ओर रहेगा।
- उसके बाद नासिका से श्वास बाहर निकालते हुए दोनों हाथ से आगे झुककर दाँयें पैर के पंजे को पकड़ेंगे।
- इसके पश्चात् गर्दन को ऊपर उठाते हुए श्वास को भीतर लेते हैं। जालन्धरबन्ध और मूलबन्ध को लगाते हैं।
- क्षमतानुसार श्वास को भीतर रोकते हैं।
- इसके बाद जालन्धरबन्ध एवं मूलबन्ध छोड़ते हैं। श्वास को धीरे-धीरे बाहर की ओर निकाल देते हैं।
- बाँयी ओर अभ्यास पूर्ण होने के बाद दाहिनी ओर से इसी प्रक्रिया को दोहराते हैं।
- एक बार श्वास को पूरा भीतर की ओर लेने के बाद जब पूर्ण रूप से रेचक किया जाता है तो ये महामुद्रा का एक चक्र होता है।
- घेरण्ड मुनि ने महामुद्रा के अभ्यास में शाम्भवी मुद्रा को भी जोड़ा है। चक्रों में विशुद्धि चक्र, मूलाधार चक्र और आज्ञाचक्र में चेतना को कुम्भक की अवस्था में घुमाने को कहा है।
- प्रारम्भ में अभ्यास को एक तरफ से 3 बार तक दोहराकर दूसरी तरफ से भी 3 बार दोहरायें।
- धीरे-धीरे अभ्यास को क्षमतानुसार बढ़ाया जा सकता है। 3 चक्र से लेकर 12 चक्र तक अभ्यास को बढ़ाया जा सकता है।
- महामुद्रा के अभ्यास में ली जाने वाली शारीरिक अवस्था में यदि अभ्यासी को कठिनाई का अनुभव हो तो ऐसी स्थिति में सिद्धासन में भी इस अभ्यास को किया जा सकता है। ध्यान देने योग्य बात बस ये है कि पैर की एड़ी से सीवनी में

उचित दबाव पड़ना आवश्यक होता है। बांकि समस्त श्वास प्रक्रिया, कुम्भक एवं बन्ध का अभ्यास उसी प्रकार से होगा।

17.3.4 सावधानियाँ — महामुद्रा का अभ्यास करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये—:

महामुद्रा जैसे की नाम से ही स्पष्ट होता है कि मुद्रा में महान है, श्रेष्ठ है। जिस प्रकार इससे होने वाले लाभ अधिक और प्रभावपूर्ण हैं ठीक उसी प्रकार इसके अभ्यास में अनेकों सावधानियाँ भी रखनी आवश्यक होती हैं। जिससे मुद्रा का सही और पूर्ण लाभ प्राप्त किया जा सके। अभ्यास में ध्यान रखने योग्य बातें इस प्रकार से हैं —:

- महामुद्रा का अभ्यास कुशल व्यक्ति के निर्देशन में ही करना चाहिये।
- सुनकर या किताबों से पढ़कर अभ्यास नहीं करना चाहिये, इससे फायदे के स्थान पर नुकसान भी हो जाता है।
- बन्ध एवं प्राणायाम के अभ्यास के बाद ही मुद्रा का अभ्यास करना चाहिये।
- उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगी को यह अभ्यास को नहीं करना चाहिये।
- खाली पेट ही महामुद्रा का अभ्यास करना चाहिये।
- शुद्धि क्रिया के पश्चात् मुद्रा का अभ्यास करने से अधिक लाभ की प्राप्ति होती है। अन्यथा विजातीय तत्व शारीरिक स्वास्थ्य में हानिकारक प्रभाव डालते हैं।
- महामुद्रा का अभ्यास शरीर में उच्च प्राण शक्ति को प्रवाहित करता है। यह शक्ति शरीर में ऊर्जा बढ़ती है। गर्मी के रूप में हम इस ऊर्जा को अनुभव कर सकते हैं। अतः अभ्यासी को यह अभ्यास गर्मी के दिनों में नहीं करना चाहिये। अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होने के कारण यह स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालती है।

17.3.5 लाभ — महामुद्रा का सही अभ्यास अभ्यासी के लिये बहुत ही लाभप्रद रहता है, अभ्यास से होने वाले लाभ इस प्रकार से हैं—:

- महामुद्रा मनुष्यों को महासिद्धि प्रदान करने में सक्षम है।
- यह पाचन शक्ति की वृद्धि में सहायक है।
- यह मुद्रा भयानक विष को पचाने की शक्ति प्रदान करती है।
- गैस, कब्ज, अजीर्ण, अपच सम्बन्धी रोगों को नष्ट करती है।
- गले सम्बन्धी रोग एवं बुखार में जिसका कारण पाचन तन्त्र की गड़बड़ी रहती है, उसमें भी ये लाभ पहुंचाता है।
- इससे टी0 वी0, कुष्ठरोग आदि रोगों में भी लाभ मिलता है।
- यह क्रिया अनुकम्पी और परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र के सन्तुलन में सहायक है।
- संवेदी और प्रेरक तन्त्रिका तन्त्रों में इन्द्रियों, शरीर और मस्तिष्क के बीच जो आदान-प्रदान होता है, उसमें शान्ति स्थापित करता है।
- ध्यान की पूर्व तैयारी के रूप में महामुद्रा का अभ्यास बहुत ही लाभप्रद है।

17.4 महावेध मुद्रा

17.4.1 नामकरण — महावेधमुद्रा मुद्रा तीन शब्दों से मिलकर बनी है। महा+वेध+मुद्रा। महा का अर्थ है श्रेष्ठ या उच्चतम, वेध का अर्थ होता है भेदन करना, मुद्रा का अर्थ परमानन्द की

स्थिति। इस प्रकार महाबेधमुद्रा की प्रक्रिया में साधक जिस प्रकार एक माला के दानों को सुई से भेदते हुए धागे में पिरोया जाता है ठीक उसी प्रकार से महाबंध मुद्रा में सप्त चक्रों जो कि शरीर में ऊर्जा के केन्द्र के रूप में जाने जाते हैं, का भेदन किया जाता है। यह प्रक्रिया उच्चस्तरीय होती है। और प्रक्रिया की पूर्णता में परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसीलिये इस मुद्रा को महाबंध मुद्रा के नाम से जाना जाता है।

17.4.2 सन्दर्भ ग्रन्थ — हठप्रदीपिका के तृतीय अध्याय के 24-30 श्लोक में तथा घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय के 41-44 श्लोक में हमें महाबंध मुद्रा का वर्णन मिलता है। जिसमें इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। ऋषिमुनियों ने अपने-अपने ढंग से इसकी विधि को समझाया और अपने अनुभवों का वर्णन किया है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम सूरी जी ने महाबेधमुद्रा का वर्णन इस प्रकार से किया है—

रूपलावण्यसम्पन्ना यथास्त्री पुरुषं बिना
महामुद्रामहाबन्धौ निश्फलौ बेधवर्जितौ।

— (3/24 ह0प्र0)

अर्थात् — जिस प्रकार यौवनसम्पन्न सुन्दरी-स्त्री पुरुष के बिना फल रहित है वैसे ही महामुद्रा और महाबन्ध ये दोनों महाबेध के बिना फलहीन है। महाबेधमुद्रा की विधि का ग्रन्थों में अलग-अलग वर्णन मिलता है।

साधक महाबन्ध लगाकर एकाग्रचित्त हो पूरक करके श्वास-प्रश्वास की गति को कण्ठमुद्रा के द्वारा रोककर दोनों हथेलियों को अच्छी तरह जमीन पर लगाकर नितम्ब को हल्के एवं धीरे से भूमि पर पटकें वायु दोनों पुटों को छोड़कर सुषुम्ना में गतिशील होता है।

इडा-पिंगला और सुषुम्ना के स्पन्दन जब आपस में परस्पर मिलते हैं तब अवश्य ही अमरत्व की प्राप्ति होती है। इसके बाद मृतावस्था की स्थिति उत्पन्न होने पर वायु का रेचन करना चाहिये। घेरण्ड संहिता में महाबेध मुद्रा को इस प्रकार से समझाया गया है—

महाबेधमुद्रा के बिना मूलबंध और महाबंध भी उसी तरह निष्फल है जिस प्रकार पुरुष के बिना स्त्री का रूप, यौवन और लावण्य व्यर्थ है। प्रथम महाबंध का अभ्यास कर उड़्डियान बंध करते हुए कुम्भक द्वारा वायु को रोके। यही महाबेध मुद्रा कही गई है। नित्य प्रति महाबेध के साथ महाबंध, मूलबंध करने वाले योगी सब योगियों से श्रेष्ठ माने जाते हैं। उन्हें वृद्धावस्था नहीं घेरती और न मृत्यु का भय ही होता है। योगियों को इसे गोपनीय रखना चाहिए।

17.4.3 विधि —

उपरोक्त विधि को सरल तरीके से इस प्रकार समझ सकते हैं —

1. सर्वप्रथम दण्डासन की स्थिति में बैठते हैं, इसमें दोनों पैर सीधे सामने की ओर रखते हैं तथा दोनों हाथ जंघा के बगल में, कमर, गर्दन सीधी रहेगी।
2. शारीरिक स्थिति लेने के पश्चात् दोनों हाथों की सहायता से पैरों को मोड़ते हुए पदमासन की स्थिति में आयेंगे।
3. इसके लिये पहले बायें पैर को मोड़कर दाहिनी जंघा के ऊपर रखेंगे फिर दायें पैर को मोड़कर बायीं पैर की जंघा के ऊपर रखेंगे।
4. इसके पश्चात् दोनों हाथों की हथेली को जंघा के अगल-बगल स्थित करेंगे। इस स्थिति में अभ्यासी का शरीर पूर्णतः शिथिल और मन शांत रहेगा। आँखें बन्द रहेंगी।
5. श्वास — प्रश्वास की स्थिति सामान्य रहेगी।

6. धीरे से गहरी लम्बी श्वास भीतर की ओर लेंगे। श्वास को भीतर ही रोकेंगे। फिर जालन्धर बन्ध लगायेंगे।
7. इसके पश्चात् हथेली पर शरीर का सारा भार नियन्त्रित करते हुए हाथों की सहायता से पूरे शरीर को ऊपर उठावेंगे।
8. अब बन्ध एवं कुम्भक की स्थिति में ही अपने नितम्बों को जमीन में पटकते हैं। बार-बार नीचे पटककर ऊपर उठाते हैं। इस प्रकार 3 से 7 बार तक इस प्रक्रिया को दोहराया जा सकता है।
9. इस क्रिया को करते समय अपना पूरा ध्यान मूलाधार चक्र पर लगाना चाहिये।
10. क्षमतानुसार क्रिया को दोहराने के पश्चात् विश्राम की स्थिति में आते हैं।
11. शरीर को जमीन में रखते हैं। हाथों का विश्राम देते हैं। जालन्धर बन्ध को छोड़ते हैं। श्वास को बाहर निकालते हैं।
12. इसके पश्चात् सामान्य श्वास-प्रश्वास करते हैं। ये पूरी प्रक्रिया क्रिया का एक चक्र हुआ।
13. विश्राम के पश्चात् सामान्य स्थिति में आने पर क्रिया का अभ्यास पुनः दोहरावें।
14. इस प्रकार से 3 चक्र तक अभ्यास को किया जा सकता है। धीरे-धीरे अधिकतम 5 चक्र तक इसको बढ़ाया जा सकता है परन्तु इससे ज्यादा अभ्यास करने में हानि हो सकती है।
15. अन्तिम चक्र के पश्चात् विश्राम की स्थिति में आयेंगे।
16. आँखों को खोलेंगे, पैरों को सीधा करेंगे। श्वासन की स्थिति में लेट जायेंगे।
17. इसके बाद क्रिया के प्रभाव को अनुभव करेंगे।

17.4.4 महाबेधमुद्रा में ली जाने वाली सावधानियाँ –

महाबेधमुद्रा का लाभकारी और शक्तिशाली प्रभाव प्राप्त करने के लिये ये आवश्यक है कि मुद्रा को करते समय कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखा जाये, जिससे अभ्यासी को क्रिया का पूर्ण फल प्राप्त हो और हानि होने की सम्भावनाएँ भी समाप्त हों। ध्यान रखने वाले महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार से हैं –:

1. उच्च रक्तचाप एवं हृदयरोगी इस अभ्यास को न करें।
2. शरीर शुद्धि के बाद ही इस अभ्यास को करना चाहिये। अन्यथा शरीर में फोड़े-फुन्सी आदि समस्या उत्पन्न होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।
3. गर्मी के दिनों में यह अभ्यास नहीं करना चाहिये।
4. सरवाइकल स्पोण्डिलाइटिस वाले व्यक्तियों को ये अभ्यास नहीं करना चाहिये।
5. आँतों की सूजन या आँतों से सम्बन्धित रोग वाले व्यक्ति को ये अभ्यास नहीं करना चाहिये।
6. गर्भवती महिलाओं को ये अभ्यास नहीं करना चाहिये।

17.4.5 महाबेधमुद्रा के लाभ – आत्मा से जुड़ने में यह मुद्रा बहुत ही प्रभावकारी और लाभप्रद प्रयोग है। चूंकि बंध शब्द का अर्थ भेदन या छेद करने से लिया जाता है, इसलिये इस मुद्रा में चेतना चक्रों एवं आत्मिक चेतना पथ को बांधा जाता है। इस मुद्रा से प्राप्त होने वाले अन्य लाभ इस प्रकार से हैं–:

1. यह मुद्रा सम्पूर्ण शरीर व मन को स्थिरता व शक्ति प्रदान करती है।
2. यह मुद्रा प्राण का प्रवाह पूरे शरीर में होने में सहायक है।
3. झुर्रियाँ, बालों का सफेद होने की समस्या इस मुद्रा से दूर होती है।

4. बुढ़ापा दूर होता है।
5. इसके अभ्यास से साधक मृत्यु पर भी विजय पा लेता है।
6. इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है। पाचन सम्बन्धी गड़बड़ी दूर करने में यह मुद्रा सहायक है।
7. अष्टसिद्धियाँ प्रदान करने में यह मुद्रा सहायक है।
8. नियमित अभ्यास करने वाले के समस्त पाप इससे दूर हो जाते हैं। और वो पुण्यों को प्राप्त करता है।
9. यह मुद्रा मूलाधार चक्र, मणिपुर चक्र एवं विशुद्धि चक्र को विशेष रूप से प्रभावित करती है।
10. ध्यान से पूर्व इस मुद्रा का अभ्यास करने से लाभ मिलता है।
11. यह मुद्रा शारीरिक, मानसिक और प्राणिक स्तर पर बहुत ही प्रभावकारी है।
12. महामुद्रा के साथ महाबंध मुद्रा का अभ्यास करने पर शरीर मन और इन्द्रियों के अन्दर एक नयी शक्ति का प्रवाह होने लगता है।
13. चेतना सूक्ष्म और गहरी हो जाती है।
14. ग्रन्थों में कहा गया है कि जो प्रतिदिन नियमित रूप से महाबन्ध, मूलबन्ध तथा का महाबंध मुद्रा अभ्यास करता है वह योग विशेषज्ञ कहलाता है।

17.5 खेचरी मुद्रा

हम जानते हैं कि हठयोग का उद्देश्य राजयोग की प्राप्ति है इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हठयोग में बताये अनेक साधनों में मुद्राओं का विशेष महत्व है। इसी प्रकार के अन्तर्गत खेचरी मुद्रा इस उद्देश्य को प्राप्त करने वाले साधनों में विशेष महत्वपूर्ण साधन है। आइये इसके बारे में विस्तार से जानें :-

17.5.1 नामकरण — खेचरी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। खे + चरी। खे = शून्य (अलौकिक) चरी = गमन करना। अर्थात् जो अलौकिकता की ओर अग्रसर कराये वही मुद्रा खेचरी मुद्रा कहलाती है। खेचरी मुद्रा का वर्णन करते हुए हठप्रदीपिका में कहा गया है कि जीभ को उल्टाकर कपालकुहर में प्रविष्ट करा दें। और तब दृष्टि को भूमध्य में लगाने से खेचरी मुद्रा होती है।

17.5.2 संदर्भ ग्रन्थ — हठयोग के ग्रन्थों में मुद्रा वाले अध्याय के अन्तर्गत हमें खेचरी मुद्रा का वर्णन मिलता है। हठप्रदीपिका के अन्तर्गत तृतीय अध्याय के 31-53 श्लोक में खेचरी मुद्रा का विस्तार से वर्णन मिलता है। साथ ही घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय के 33-40 श्लोक में भी हमें खेचरी मुद्रा की विधि लाभ सावधानियों के बारे में चर्चा मिलती है। जो इस प्रकार से है—

जीभ को उलटकर कपालकुहर में प्रविष्ट करा दें। और तब दृष्टि को भूमध्य में लगाने से खेचरी मुद्रा होती है। काटना चालन और दोहन इन तीनों क्रियाओं के द्वारा कमश जीभ को तब तक बढ़ाते रहना चाहिए जब तक वह भूमध्य को स्पर्श न कर ले। तब खेचरी सिद्ध होती है। थूअर के पत्ते के समान तेज धारवाला स्निग्ध तथा निर्मल अर्थात् कीटाणु रहित शस्त्र लेकर उसके द्वारा जीभ के मूल को बाल भर काटें।

इसके बाद सेंधा नमक तथा हरडे के चूर्ण से जिह्वा का घर्षण करे। सात दिन के बाद पुनः बाल भर काटें। इस क्रम से छहमास तक उक्त विधि से रोजाना अभ्यास करे। इस तरह करने से जिह्वा मूल का शिराबंध हट जाता है। इसके पश्चात् जीभ को उलटकर कपालकुहर में प्रविष्ट कराते हैं यह खेचरी मुद्रा होती है। इसे व्योम चक्र भी कहते हैं।

घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय के 33-40 श्लोक में वर्णन इस प्रकार से है—

जिह्वा और जिह्वामूल को मिलने वाली जो नदी जिह्वा के नीचे होती है, उसका छेदनकर जिह्वा के अग्रभाग का निरंतर चालन करें तथा मक्खन लगाकर दोहन करते हुए लोहे की चिमटी से खींचें। रोजाना इसका अभ्यास करने से जिह्वा बढ़ जाती है। उसे इतना लम्बा कर लेना चाहिए की वह भोहो के मध्य तक पहुँच सके। इस प्रकार धीरे-धीरे तालू मूल में प्रविष्ट कराए। जिह्वा को उल्टा करके ऊपर की ओर कपालरंध में ले जाना चाहिए। उस समय दोनों भोहों के मध्य भाग में दृष्टि रखें। यह खेचरी मुद्रा होती है।

17.5.3 विधि — उपरोक्त विधि की विस्तारित व्याख्या —

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक (पद्मासन, सिद्धासन, स्वास्तिकासन) आसन में बैठते हैं।
- दोनों हाथ घुटनों के ऊपर रखते हैं।
- आँखें सहजता से बंद करते हैं।
- फिर जिह्वा को मोड़कर सावधानीपूर्वक तालु के ऊपरी छिद्र में प्रवेश कराते हैं।
- यह क्रिया धीरे-धीरे करनी चाहिये।
- इस क्रिया के दौरान मुँह बन्द रहेगा।
- क्रिया की पूर्ण स्थिति में आज्ञा चक्र पर ध्यान एकाग्र रखेंगे।
- पूर्णस्थिति में श्वास की गति सामान्य रहेगी। अभ्यास बढ़ते जाने के साथ-साथ श्वास की संख्या प्रतिमिनट कम होती जायेगी।
- खेचरी मुद्रा का अभ्यास व्यक्ति की क्षमतानुसार हो सकता है। जब तक वह एकाग्रता के साथ स्थिर स्थिति में सुखपूर्वक बैठ सके तब तक अभ्यास कर सकते हैं।
- अभ्यास के अन्त में जिह्वा को धीरे से सीधा करेंगे।
- कुछ देर शांत बैठकर धीरे-धीरे आँखों को खोलेंगे।
- दोनों पैरों को सीधा करेंगे और विश्राम की स्थिति में आयेंगे।

स्वात्माराम सूरी जी ने हठप्रदीपिका के 3/46,47 में कहा है कि —

प्रतिदिन गोमांस का भक्षण करने वाले तथा अमरवारुणी का पान करने वाले को मैं योगी मानता हूँ। उससे अन्य सभी कुलघातक (अयोगी) है।

यहाँ पर गोमांस को इस प्रकार से समझाया गया है। गो अर्थात् जीभ, माँस अर्थात् जीभ जिस मांसपेशियों द्वारा निर्मित है उसे मांस कहा गया है। भक्षण अर्थात् जीभ का जब कपालगुहा के अन्दर प्रवेश कराया जाता है तो इस प्रक्रिया को भक्षण कहते हैं।

स्पष्टतः हम कह सकते हैं कि गोमांस भक्षण का अर्थ जीभ को कपालगुहा में प्रवेश करने से है, जिसे हम खेचरी मुद्रा कहते हैं। इस प्रकार उपरोक्त पंक्तियों का अर्थ हुआ कि खेचरी मुद्रा करने वाले को योगी और न करने वाले को स्वात्माराम जी ने अयोगी माना है।

खेचरी मुद्रा के अभ्यास से पूर्व तैयारियाँ —

जैसा कि हमने जाना कि खेचरी मुद्रा में जिह्वा को उलटकर कपालकुहर में प्रवेश कराया जाता है। इसके लिये जिह्वा को पहले तैयार किया जाता है उसकी लम्बाई एवं लचीलेपन को बढ़ाया जाता है। महीनों तक चलने वाले पूर्व अभ्यास के पश्चात् ही खेचरी मुद्रा में पूर्णता प्राप्त होती है। प्रक्रिया इस प्रकार से है —

जिह्वा को काटकर चालन एवं दोहन क्रिया के द्वारा लम्बा एवं लचीला बनाया जाता है। काटना – जिह्वा एवं जिह्वा मूल को जोड़ने वाली जो नाड़ी है, उसको काटते हैं। इससे जीभ लम्बी होती है। पहले के समय में काटने के लिये तेज धार वाले पत्ते पेड़ की जड़ का प्रयोग करते थे। जैसे – तेज पत्ता, जिससे कोई हानि नहीं होती थी। ग्रन्थों में बाल के बराबर हल्का सा काटने का विधान बताया गया है। क्रिया के अभ्यास के लिये हर हफ्ते थोड़ा-थोड़ा काटना पड़ता है। चालन- जिह्वा को पकड़कर उसको दायें-बायें, ऊपर-नीचे चलाया जाता है।

दोहन – जिस प्रकार गाय के थन से दूध निकालते समय दबाव के साथ खींचा जाता है, ठीक उसी प्रकार से जिह्वा की भी मालिश की जाती है। सेन्धा नमक एवं हरड़े के चूर्ण से तथा मक्खन, तेल आदि चिकनाई युक्त पदार्थों का प्रयोग इसके लिये किया जाता है। छः महीने तक लगातार काटना, चालन और दोहने से जीभ लम्बी और लचीली हो जाती है साथ ही जीभ के नीचे की जो नाड़ी है वह भी हट जाती है। जिससे जीभ आसानी से कपाल गुहा में प्रवेश कर लेती है।

17.5.4 सावधानियाँ –

- खेचरी मुद्रा के अभ्यास में प्रारम्भ में अभ्यासी कठिनाई का अनुभव कर सकता है परन्तु निरन्तर नियमित अभ्यास से वह क्रिया में पूर्णता प्राप्त करने में सक्षम होता है।
- जीभ या मुंह में कोई रोग होने पर इस अभ्यास को नहीं करना चाहिये।
- जीभ को काटने की प्रक्रिया जानकार व्यक्ति के संरक्षण में ही होनी चाहिये।
- जीभ की दोहन और चालन प्रक्रिया नियम से बिना किसी जल्दबाजी के करनी चाहिये।
- उचित मार्ग दर्शन में ही खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिये।
- अगर अभ्यास के समय मुंह के भीतर कड़वे स्वाद जैसी अनुभूति हो तो अभ्यास रोक देना चाहिये। यदि अभ्यास नहीं रोका तो यह कड़वा स्वाद शरीर के लिये जहर बन सकता है जो कि शरीर को नुकसान पहुँचाता है।
- कड़वा स्वाद अनुभव होने का एक कारण और हो सकता है। यदि हमारे शरीर में विजातीय पदार्थ पूर्ण रूप से साफ नहीं हो रखे हैं तो ऐसी स्थिति में भी कड़वा स्वाद अनुभव होता है। ऐसी स्थिति में हठयोग में वर्णित शुद्धि क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिये।
- शुद्धि क्रियाओं को षट्क्रिया के नाम से भी जाना जाता है। इसमें छः प्रकार से शरीर की सफाई की जाती है और शरीर में उपस्थित विजातीय पदार्थों को बाहर निकाला जाता है। इन क्रियाओं से शरीर विकार रहित हो जाता है। खेचरी मुद्रा के अभ्यास के लिये ये आवश्यक है कि अभ्यासी का शरीर विकार रहित हो।
- खेचरी मुद्रा से पूर्व प्राणायाम का अभ्यास इसमें सहायता प्रदान करता है। मुद्रा का अभ्यास श्वासों की मन्दता स्थिरता को दर्शाता है, शरीर और मन शान्त रहे एवं क्रिया उचित रूप से हो इसके लिये प्राणायाम का अभ्यास आवश्यक है।

- ध्यानात्मक आसन का अभ्यास भी इसके लिये आवश्यक है। जब तक एक आसन में स्थिर होकर बैठने का अभ्यास नहीं होगा तब तक खेचरी मुद्रा की उच्च स्थिति में पहुँचना कठिन होता है।

17.5.5 लाभ — ग्रन्थों में खेचरी मुद्रा के लाभों का वर्णन इस प्रकार से किया गया है —

- जो आधे क्षण मात्र भी जीभ को तालु से लगाकर रख लेता है, वह विष, रोग, अकाल मृत्यु एवं बुढ़ापे से मुक्त हो जाता है।
- खेचरी मुद्रा सिद्ध होने से रोग, मृत्यु, आलस्य, निद्रा, मूर्च्छा नहीं सताती है।
- जीभ मोड़ने पर लार ग्रन्थियों से अधिक रस निकलता है जिससे शारीरिक स्वास्थ्य में लाभ पहुँचता है, भूख-प्यास नहीं लगती है।
- खेचरी सिद्ध योगी को रोग नहीं सताते हैं।
- व्यक्ति कर्म बन्धन में नहीं बन्धता।
- ऐसा व्यक्ति जन्म-मरण के चक्रव्यूह से मुक्त हो जाता है।
- खेचरी मुद्रा के द्वारा व्यक्ति अपनी चेतना को कारण शरीर में प्रवेश करा लेता है।
- खेचरी सिद्ध व्यक्ति के शरीर को जल, अग्नि, वायु प्रभावित नहीं करती है।
- यह मुद्रा प्राण-शक्ति का संचय एवं कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करती है।
- सहस्रार से निरन्तर टपकने वाले सोम रस को नाभि मण्डल में गिरकर क्षय होने से बचाने के लिये खेचरी मुद्रा बहुत ही प्रभावकारी प्रक्रिया है। सोमरस रूपी अमृत का पान होने पर साधक को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार के लाभ होते हैं।

खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हुये जब दोहन आदि क्रियाओं के पश्चात् जीभ को कपाल गुहा में प्रविष्ट कराया जाता है तब वहाँ उपस्थित स्वादग्रन्थियों से स्वाद का अनुभव होने लगता है। जैसे — कड़वा, खारा, मीठा। जब जीभ और भीतर की ओर घुसती है तब दूध, मक्खन आदि जैसा स्वाद जो कि नैसर्गिक स्वाद है, अनुभव होने लगता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

- बहुविकल्पिक प्रश्न —

- (1) हठप्रदीपिका के कौन से अध्याय में महामुद्रा का वर्णन मिलता है।
 (अ) तृतीय (ब) चतुर्थ
 (स) द्वितीय (द) इनमें से कोई नहीं
- (2) हठप्रदीपिका के अनुसार महाबन्ध का अभ्यास कौन से बन्ध के साथ किया जाता है।
 (अ) जालन्धर बन्ध (ब) मूलबन्ध
 (स) मूलबन्ध व उड्डियान बन्ध (द) उपरोक्त सभी के साथ
- (3) घेरण्ड संहिता में महावेध मुद्रा का वर्णन मिलता है।
 (अ) 41 से 44 (ब) 42 से 45
 (स) 40 से 42 (द) 43 से 45
- (4) हठप्रदीपिका में खेचरी मुद्रा का वर्णन मिलता है।
 (अ) 3/46-47वें श्लोक में (ब) 3/46-49वें श्लोक में
 (स) 3/45-47वें श्लोक में (द) इनमें से कोई नहीं

● रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –

- (1) महावेध का वर्णन हठप्रदीपिका के श्लोक में मिलता है।
- (2) खेचरी मुद्रा सिद्ध होने पर रस की प्राप्ति होती है।
- (3) घेरण्ड संहिता के अनुसार महामुद्रा का वर्णन श्लोक में मिलता है।
- (4) हठप्रदीपिका में मुद्राओं तथा घेरण्ड संहिता में मुद्राओं का वर्णन मिलता है।

● सत्य और असत्य को चिन्हित करें –

- (1) शुद्धि किया के पश्चात् मुद्रा का अभ्यास करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है। (.....)
- (2) गर्मी के दिनों में महामुद्रा का अभ्यास अधिक करना चाहिए। (.....)
- (3) सरवाईकल स्पाण्डिलाइटिस वाले व्यक्तियों को महामुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिए। (.....)
- (4) हठप्रदीपिका के तीसरे अध्याय के 9-17वें श्लोक तक महामुद्रा का वर्णन मिलता है। (... ..)

17.6 सारांश –

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत पाठकों को हठयोग में वर्णित तीन महत्वपूर्ण मुद्राएँ महामुद्रा, महाबेधमुद्रा, एवं खेचरी मुद्रा के बारे में विस्तार से जानकारी दी गई है। इकाई के उद्देश्यों को समझाते हुए इकाई की शुरुआत की गई है। जिसमें प्रारम्भ में महामुद्रा की विधि को समझाया गया है। ग्रन्थों में इसके वर्णन को बताते हुए महामुद्रा के लाभ एवं सावधानियों को भी बताया गया है।

इकाई में वर्णित दूसरी मुद्रा महाबेधमुद्रा का विस्तार से वर्णन किया गया है जिसमें इसके नामकरण को समझाते हुए ग्रन्थों में कहाँ-कहाँ इस मुद्रा की चर्चा मिलती है इसको स्पष्ट किया गया है। अभ्यासी को इस मुद्रा से क्या लाभ प्राप्त होता है साथ ही किन-किन बातों को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति को ये अभ्यास करना चाहिये। इन सभी बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

इस इकाई में खेचरी मुद्रा की विधि के अन्तर्गत समझाया गया है, कि किस प्रकार से खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिये। साथ ही ये भी समझाया गया है कि खेचरी मुद्रा के अभ्यास को करने के लिये पूर्वाभ्यास किस प्रकार से करना चाहिये। जीभ को तालु से लगाने एवं उसे कपालगुहा में भीतर डालने के लिये किस प्रकार की तैयारी की आवश्यकता होती है। साथ ही खेचरी मुद्रा से प्राप्त होने वाले लाभों को भी विस्तार से समझाया गया है। खेचरी मुद्रा के अभ्यास को शुरू करने से पूर्व एवं बाद में बहुत सी बातों का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है, जिससे कि मुद्रा का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त किया जा सके। इसके अभाव में हानि होने की सम्भावनाएँ अधिक बढ़ जाती हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत इकाई की पाठ्य सामग्री में इकाई के समस्त उद्देश्यों की पूर्ति की गई है।

17.7 शब्दावली

- कपालगुहा – तालु के पीछे मस्तिष्क एवं गले तक का भाग
- महा क्लेश – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश नामक 5 क्लेश हैं जो कि दुःख का कारण हैं।

- भय – डर
- पाचन शक्ति – भोजन को पचाने वाली शक्ति
- विजातीय पदार्थ – शरीर द्वारा त्याज्य पदार्थ, जो शरीर में रहने पर उसे नुकसान पहुँचाते हैं।
- प्राण – जीवनी शक्ति
- कुम्भक – श्वास को रोकना
- सप्त चक्र – हठयोग में वर्णित सात ऊर्जा केन्द्र व्यक्ति के शरीर में हैं जिन्हें चक्र के नाम से जाना जाता है।
- सुषुम्ना – हठयोग में तीन मुख्य नाड़ियों का वर्णन किया गया है इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना जिनमें सुषुम्ना अतिसूक्ष्म एवं महत्वपूर्ण नाड़ी है।
- रेचन – श्वास बाहर निकालना
- शिथिल – ढीला
- श्वास-प्रश्वास – बाहर की वायु को भीतर लेना और भीतर से वायु को बाहर निकालना
- मूर्च्छा – चक्कर आना
- सहस्रार – 1000 पत्तियों वाला चक्र जिसका स्थान तालु में बताया गया है।

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

- बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर –

(1). अ	(2). अ	(3). अ	(4). अ
--------	--------	--------	--------
- रिक्त स्थानों के उत्तर –

(1) 24–30	(2) सोम	(3) 29–31	(4) 10, 24
-----------	---------	-----------	------------
- सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –

(1) सत्य	(2) असत्य	(3) सत्य	(4) असत्य
----------	-----------	----------	-----------

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- | | | |
|-------------------------------|---|--------------------------|
| 1. घेरण्ड संहिता | – | स्वामी निरन्जनानन्द |
| 2. हठप्रदीपिका | – | कुवल्यानन्द |
| 3. हठयोग प्रदीपिका | – | स्वामी मुक्तिबोधानन्द |
| 4. आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध | – | स्वामी सत्यानन्द सरस्वती |

17.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. महामुद्रा क्या है? इसके अर्थ व विधि को समझाते हुए इससे मिलने वाले लाभों व सावधानियों पर प्रकाश डालें।
2. महाबेधमुद्रा क्या है? इसके अर्थ को समझाते हुए इससे मिलने वाले लाभ व सावधानियों पर प्रकाश डालें।
3. हठयोग ग्रन्थों में वर्णित खेचरी मुद्रा की विधि को विस्तार से समझाते हुए इसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन करें।

इकाई 18 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित मुद्राओं की विधि सावधानियाँ एवं लाभ— विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालिनी

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 विपरीतकरणी मुद्रा – नामकरण, संदर्भ ग्रन्थ, विधि, सावधानियाँ, लाभ

18.4 वज्रोली मुद्रा – नामकरण, संदर्भ ग्रन्थ, विधि, सावधानियाँ, लाभ

18.5 शक्तिचालिनी मुद्रा – नामकरण, संदर्भ ग्रन्थ, विधि, सावधानियाँ, लाभ

18.6 सारांश

18.7 शब्दावली

18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.9 सन्दर्भ ग्रन्था सूची

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

हठयोग में योग मुद्राओं की चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं। जिससे पाठक इनके मुद्राओं के व्यवहार से थोड़े परिचित तो हो ही चुके हैं। यौगिक मुद्रा बहुत व्यवहारिक विषय नहीं है। यह गुप्त रखने वाला ज्ञान है जिसे सामान्य व्यक्ति से नहीं बल्कि अनुभवशील व्यक्ति द्वारा ही सीखा जाता है अन्यथा अभ्यासी को शारीरिक मानसिक क्षति होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

प्रस्तुत इकाई में आपको विपरीतकरणी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा एवं शक्तिचालिनी मुद्रा के बारे में विस्तार से जानकारी दी जा रही है। इन मुद्राओं का शारीरिक मानसिक स्तर पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इन्हें बहुत ही एकाग्रता एवं स्थिरता के साथ करना चाहिये। इसीलिये हठयोग के कुछ ग्रन्थों में आसन और प्राणायाम के बाद ही मुद्राओं के अभ्यास को करने का विधान बताया गया है। क्योंकि आसन से शारीरिक दृढ़ता एवं प्राणायाम से शरीर में हल्कापन आता है जिनमें शुद्धि क्रियायें भी सहायक होती हैं।

18.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद पाठक जान पायेंगे कि हठयोग के अन्तर्गत वर्णित मुद्राओं में विपरीतकरणी मुद्रा का वर्णन हठयोग ग्रन्थ में कहाँ पर किया गया है।
- विपरीतकरणी मुद्रा को किस प्रकार से किया जाता है।
- विपरीतकरणी मुद्रा को करने से अभ्यासी को क्या लाभ प्राप्त होता है।
- विपरीतकरणी मुद्रा को करते समय किन-किन सावधानियों का ध्यान रखना आवश्यक होता है।
- विपरीतकरणी मुद्रा को इस नाम से क्यों जाना जाता है।
- वज्रोली मुद्रा को किस प्रकार से किया जाता है।
- वज्रोली मुद्रा करने के क्या लाभ हैं।

- हठयोग के ग्रन्थों में इस मुद्रा को करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखने को कहा गया है।
- वज्रोली मुद्रा के नामकरण के बारे में।
- ग्रन्थों में कहाँ-कहाँ पर वज्रोली मुद्रा का वर्णन मिलता है।
- शक्तिचालिनी मुद्रा को किस प्रकार से किया जाता है।
- ग्रन्थों में कहाँ-कहाँ पर शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन मिलता है।
- शक्तिचालिनी मुद्रा के अभ्यास से प्राप्त होने वाले लाभों के बारे में जानकारी।
- शक्तिचालिनी मुद्रा को करते समय ध्यान रखने योग्य बातों के बारे में।
- शक्तिचालिनी मुद्रा को इस नाम से क्यों जाना जाता है।

योग के क्षेत्र में रूचि रखने वाले जिज्ञासुओं को प्रस्तुत इकाई में विपरीतकरणी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा एवं शक्तिचालिनी मुद्रा के बारे में विस्तार से जानकारी देकर उनकी जिज्ञासाओं को संतुष्ट करने का प्रयास किया गया है। मुद्राओं का वर्णन इस प्रकार से है

18.3 विपरीतकरणी मुद्रा

18.3.1 नामकरण — विपरीतकरणी मुद्रा, यह नाम तीन शब्दों से मिलकर बना है — विपरीत + करणी + मुद्रा विपरीत अर्थात् उल्टा, करणी अर्थात् करना, मुद्रा अर्थात् ऐसी शारीरिक स्थिति जिसमें प्रसन्नता की अनुभूति हो।

इस मुद्रा में शरीर की जो सामान्य स्थिति होती है जिसमें पैर नीचे और सिर ऊपर की ओर रहता है इसे उल्टा कर दिया जाता है। इस मुद्रा की पूर्ण स्थिति में अभ्यासी के पैर ऊपर एवं सिर नीचे की ओर करके स्थिर रहकर आनन्द का अनुभव लिया जाता है। इसीलिये इस मुद्रा को विपरितकरणी मुद्रा कहते हैं।

18.3.2 संदर्भ ग्रन्थ — स्वात्माराम जी द्वारा रचित हठयोग प्रदीपिका में तीसरे अध्याय के 76-81 तक विपरीतकरणी मुद्रा का वर्णन किया गया है। साथ ही घरेण्ड मुनि द्वारा रचित घरेण्ड संहिता में तृतीय अध्याय के 45-48 तक हमें इसका वर्णन मिलता है।

हठयोग प्रदीपिका में स्वात्माराम जी के अनुसार सोममंडल से जो दिव्यरूप अमृत स्रावित होता है उन सब को सूर्य खा जाता है। इससे शरीर में बुढ़ापा आता है। उसके निवारणार्थ एक क्रिया होती है, जिससे सूर्य के मुख में उस स्राव का जाना टल जाता है। वह क्रिया गुरु के द्वारा ही जानी जा सकती है न कि करोड़ों शास्त्रार्थ से। नाभि को ऊपर और तालु को नीचे करने से सूर्य मंडल ऊपर और सोममंडल नीचे हो जाता है। इसे ही विपरीतकरणी कहते हैं, जिसे गुरु से ही सीखना चाहिए।

घरेण्ड संहिता में घरेण्ड मुनि जी के अनुसार नाभिमूल में सूर्य नाड़ी और तालू में चन्द्र का वास है। सूर्य द्वारा चन्द्र से स्रावित अमृत का पान करने से प्राणी की मृत्यु होती है परन्तु चन्द्र नाड़ी के अमृत पान करने पर मृत्यु का भय नहीं रहता। अतएव सूर्य को ऊपर और चन्द्र को नीचे कर लें। यही विपरीतकरणी मुद्रा है जो सब प्रकार से गोपनीय है। सिर को भूमि में लगाकर दोनों हाथ टेकें और दोनों पावों को ऊपर उठाकर कुम्भक के द्वारा वायु को रोकें ये ही विपरीत करणी मुद्रा है। इसका नित्य अभ्यास करने से वृद्धावस्था और मृत्यु नष्ट हो जाती है। इसका नित्य अभ्यास करने वाला सब लोकों में सिद्धि सम्पन्न एवं प्रलयकाल में भी दुःखित नहीं होता।

18.3.3 विधि — सरल भाषा में विधि को इस प्रकार से समझा जा सकता है —

1. सर्वप्रथम पीठ के बल सीधे लेट जाते हैं।
2. दोनों पैरों को आपस में मिलाकर रखते हैं। दोनों हाथों को जंघा से सटाकर रखते हैं।
3. हथेली जमीन की ओर रखते हैं।
4. धीरे-धीरे श्वास को भीतर की ओर भरते हैं।
5. फिर श्वास को भीतर ही रोक कर दोनों पैरों को एक साथ धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठाते हैं। क्रमशः इस प्रकार से — 45, 60, 90 अंश के कोण में।
6. इसके पश्चात् दोनों हथेलियों की सहायता से नितम्बों को ऊपर की ओर उठाते हैं।
7. कोहनियों को मोड़कर हथेलियों की सहायता से नितम्बों को सहारा देंगे ताकि पैरों का हवा में संतुलन बना रहे।
8. दोनों पैरों को थोड़े खिंचवा के साथ सीधा करते हुए सिर की तरफ थोड़ा झुकाकर रखेंगे ताकि आँखों की सीध में पैर आ जाये।
9. पूर्ण स्थिति में आँखें बन्द रखेंगे।
10. शारीरिक स्थिति लेने के बाद उसी में स्थिर रहेंगे, श्वास बाहर निकालेंगे।
11. इसके पश्चात् शरीर के भीतर स्थित चक्रों पर एकाग्रता बनायेंगे।
12. श्वास लेते हुए मणिपुरचक्र से विशुद्धि चक्र पर चेतना को ले जाते हैं।
13. श्वास छोड़ते समय विशुद्धि चक्र से आज्ञा चक्र पर चेतना को ले जाते हैं।
14. इस प्रकार श्वास एवं प्रश्वास की क्रिया पर चेतना की गति ऊपर की ओर ही बढ़ती रहेगी।
15. मुद्रा के अभ्यास के दौरान पूर्ण एकाग्रता चक्रों पर बनाकर ही रखते हैं।
16. पूर्ण शारीरिक स्थिति में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि टुड्डी कण्डकूप से न लगे अर्थात् विपरितकरणी मुद्रा में जालन्धर बन्ध नहीं लगेगा।
17. प्रारम्भ में 5 से 7 बार तक अभ्यास को दोहराया जा सकता है। फिर धीरे-धीरे कुछ महीनों के अभ्यास के बाद 21 बार तक मुद्रा की आवृत्ति की जा सकती है।
18. साथ ही उज्जायी प्राणायाम एवं खेचरी मुद्रा के अभ्यास को भी जोड़ देते हैं।
19. मुद्रा के अभ्यास के पश्चात् श्वास को भीतर ही रोककर अर्थात् अन्तःकुम्भक के साथ पैरों को धीरे-धीरे नीचे रखेंगे। इसके लिये पहले कमर फिर नितम्ब फिर पैरों को नीचे लायें।
20. पैरों को नीचे रखने के पश्चात् श्वास पूर्णतः बाहर निकालेंगे।
21. इसके पश्चात् शरीर को पूर्णतः ढीला छोड़ते हैं, फिर श्वासन की स्थिति में विश्राम करते हैं।
22. ध्यान के अभ्यास से पूर्व विपरितकरणी मुद्रा का अभ्यास लाभदायक होता है।

18.3.4 सावधानियाँ — विपरितकरणी मुद्रा के अभ्यास से अभ्यासी को जितना लाभ मिलता है यदि वह कुछ बातों का ध्यान न रखे तो लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावनाएँ भी बढ़ जाती हैं। इसलिये अभ्यास के दौरान निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना अत्यावश्यक है —:

1. उच्च रक्तचाप एवं हृदयरोगी इस अभ्यास को न करें।
2. थायरायड की समस्या से ग्रसित व्यक्ति इस अभ्यास को न करे।
3. अस्वस्थ स्थिति में विपरितकरणी मुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

4. शरीर में विजातीय पदार्थों की वृद्धि होने पर इसका अभ्यास नहीं करना चाहिये।

18.3.5 लाभ — विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास का विशेष महत्व इस प्रकार से है —:

इस मुद्रा में चक्रों का विशेष महत्व है। मुख्यतः तीन चक्रों पर ध्यान को विशेष रूप से एकाग्र किया जाता है — मणिपुर चक्र, विशुद्धि चक्र, बिन्दु चक्र।

मणिपुर चक्र सूर्य का केन्द्र स्थान माना जाता है। और बिन्दु चक्र चन्द्र का केन्द्र स्थान माना जाता है। हठयोग में कहा जाता है कि चन्द्र मण्डल से निरन्तर अमृत रस टपकता रहता है जो सूर्य मण्डल में गिरने से भस्म हो जाता है, जिसके कारण उसका पूर्ण लाभ व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता। विपरीतकरणी मुद्रा में जब पैरों को ऊपर करके शरीर को उल्टा किया जाता है तब सूर्य मण्डल के ऊपर होने से चन्द्र मण्डल से गिरने वाले अमृत रस की क्षति समाप्त हो जाती है। और व्यक्ति को उसका पूरा-पूरा लाभ प्राप्त होता है।

1. विपरीतकरणी मुद्रा का नियमित अभ्यास पाचन शक्ति को बढ़ाता है।
2. यह क्रिया सूक्ष्म शरीर को पवित्र करने में भी सहायक है।
3. यह अभ्यास झुर्रियों को दूर करता है।
4. बाल काले होते हैं।
5. तीन घंटे प्रतिदिन इसका अभ्यास करने से अभ्यासी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।
6. इससे बुढ़ापा नहीं आता।
7. यह अभ्यास बवासीर, कब्ज, हर्निया में लाभ पहुँचाता है।
8. मस्तिष्क में रक्त के संचार को बढ़ाता है।
9. नाड़ियों में प्राण के प्रवाह को बढ़ाने में यह अभ्यास लाभदायक होता है।
10. इस मुद्रा का अभ्यास सन्तुलन उत्पन्न करता है, जिससे शारीरिक व मानसिक स्तर पर लाभ मिलता है।

18.4 ब्रजोली मुद्रा

18.4.1 नामकरण —

हठयोग में नाड़ियों का विशेष महत्व है। हजारों लाखों नाड़ियों का वर्णन हमें हठयोग में मिलता है जिनमें प्रमुख सुषुम्ना नाड़ी के भीतर भी तीन नाड़ियों की उपस्थिति बताई गई है —: वज्रानाड़ी, चित्रानाड़ी, ब्रह्मनाड़ी। वज्रोली मुद्रा वज्रा नाड़ी से सम्बन्धित होती है। इसीलिये इस क्रिया को वज्रोली मुद्रा कहा जाता है।

18.4.2 सन्दर्भ ग्रन्थ — स्वात्माराम सूरी जी द्वारा हठयोगप्रदीपिका में तृतीय अध्याय के 82-89 श्लोक में वज्रोली मुद्रा का वर्णन इस प्रकार से मिलता है।

योगशास्त्र के नियमों के बिना भी स्वेच्छा से रहने वाला साधक यदि वज्रोली मुद्रा को जनता है तो वह योग में सफलता को प्राप्त कर लेता है। उस प्रक्रिया में जिस किसी के लिए दुर्लभ दो वस्तु रखी जाती है। पहला सोममंडल का स्राव और दूसरा स्वाधीन नाड़ी अर्थात् चित्रा नाड़ी। धीरे-धीरे अच्छी तरह से योनी मंडन का आकुंचन करना चाहिए ऐसा करने से पुरुष अथवा नारी दोनों ही वज्रोली का फल प्राप्त करते हैं। यत्न पूर्वक अच्छी नली से फुत्कार के साथ मूत्र मार्ग में वायु का प्रवेश कराए। इस प्रकार धीरे-धीरे करने से भीतर वायु का संचार होगा। योनी मंडल में आकर गिरने वाले बिंदु को अभ्यास के द्वारा ऊपर उठाए और उस चलायमान बिंदु को ऊपर ही खींचकर रखें। इस प्रकार बिंदु की रक्षा करने वाला योग का जानकार साधक मृत्यु को जीत लेता है। बिंदु का क्षरण ही मृत्यु है

और बिंदु की रक्षा ही जीवन है। साथ ही घेरण्ड मुनि द्वारा रचित घेरण्ड संहिता में तृतीय अध्याय के 57-60 श्लोक में वज्रोली मुद्रा का वर्णन इस प्रकार से मिलता है -

दोनों हाथों को दृढ़ता पूर्वक धरती पर टेकें और दोनों पैरों तथा सिर को आकाश में उठा दें। ज्ञानियों ने इसे शक्ति संचार करने वाली तथा जीवन प्राप्त करने वाली वज्रोली मुद्रा कहा है। यह मुद्रा योगियों के लिये मुक्ति देने वाली हितकारिणी सिद्धिदायिनी तथा श्रेष्ठ है। इसके प्रसाद से बिन्दु सिद्ध होने के कारण साधक उर्ध्वरेतस तत्व में समर्थ होता है और जब सिद्धि प्राप्त कर ली जाती है तब पृथ्वी पर कौन सा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता यदि भोगी मनुष्य भी इस मुद्रा का साधन करें तो उन्हें सभी सिद्धियां मिल जाती हैं।

यहाँ पर विस्तार से वज्रोली मुद्रा की विधि, लाभ एवं अभ्यास के दौरान रखने वाली सावधानियों के बारे में चर्चा मिलती है।

18.3.1 विधि -

1. सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाते हैं।
2. दोनों हाथ घुटनों के ऊपर रखते हैं।
3. शरीर को तनाव रहित रखते हैं।
4. इसके पश्चात् नेत्रों को सहजता से बन्द करते हैं।
5. श्वास-प्रश्वास को सामान्य बनाये रखते हैं।
6. प्रारम्भिक अभ्यास में निम्न उदर प्रदेश पर तनाव लाते हुए तथा मूत्र प्रणाली का संकोच करते हुए प्रजनन अंगों को ऊपर की ओर खींचते हैं।
7. प्रारम्भिक अभ्यास के पश्चात् अभ्यास की पूर्णता आने पर नली से मूत्र मार्ग में वायु का प्रवेश कराते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे करने से भीतर वायु का संचार होता है।

हठप्रदीपिका में बताया गया है कि योनिमण्डल में आकर गिरने वाले सोमस्राव को अभ्यास के द्वारा ऊपर उठाकर उसे ऊपर ही खींचकर रखते हैं।

नोट - :

1. आसन प्राणायाम मुद्राबन्ध नामक पुस्तक में वज्रोली मुद्रा के अभ्यास के अन्तर्गत मूत्र नली में लगभग 12 इंच लम्बी चाँदी की नली का प्रवेश कराने को कहा गया है।
2. फिर इस नलिका से पानी, मधु और पारा ऊपर खींचने को कहा गया है।
3. घेरण्ड संहिता में घेरण्ड मुनि ने ब्रह्मचर्य आसन में इस मुद्रा का अभ्यास करने की बात बताई है।
4. इसमें दोनों पैरों को सीधा सामने की ओर मिलाकर रखते हैं।
5. दोनों हाथों को नितम्बों के पास रखते हैं।
6. सिर गर्दन एवं कमर एक सीध में रखते हैं।
7. तत्पश्चात् पूरे शरीर को हाथों की सहायता से जमीन से ऊपर उठा लेते हैं।
8. इस स्थिति में मूलबन्ध दृढ़ता के साथ स्वतः ही लग जाता है। और दृढ़ता से लगा मूलबन्ध वज्रनाड़ी पर प्रभाव डालती है।

18.4.4 लाभ - वज्रोली मुद्रा का अभ्यास अत्यन्त गोप्य विधि द्वारा किया जाता है। इससे प्राप्त होने वाले लाभों का वर्णन इस प्रकार से है -:

1. प्रजनन अंगों में प्राण ऊर्जा का समुचित प्रवाह होता है।
2. अभ्यासी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। व्यक्ति का मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। जिसे क्लेश के रूप में योग सूत्र में भी समझाया गया है।

3. साधक की अकाल मृत्यु नहीं होती है।
4. बिन्दु धारण से साधक के शरीर में सुगन्ध उत्पन्न होती है।
5. वीर्य शक्ति पर नियन्त्रण प्राप्त कर साधक ओज युक्त होता है।
6. स्वप्नदोष समाप्त होता है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण होता है।
7. चक्रों की शक्ति बढ़ती है।
8. कहा गया है कि इन्द्रिय सुख लोलुपता अत्यधिक रहने पर भी इन्द्रिय सुख के पीछे भागते रहने पर भी इस मुद्रा के अभ्यास से सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं।
9. यह मुद्रा ब्रह्मचर्य के पालन के लिये बहुत ही उपयोगी क्रिया विधि है।

18.4.5 सावधानियाँ —

वज्रोली मुद्रा का अभ्यास सामान्यतः बहुत व्यवहारिक अभ्यास नहीं है। यह बहुत ही गुप्त विद्या है। इस क्रिया को केवल सुनकर या पढ़कर नहीं करना चाहिये। योग्य व्यक्ति के निर्देशन में यह अभ्यास करना आवश्यक है। कुछ और विशेष सावधानियाँ इस अभ्यास में आवश्यक हैं जिनसे अभ्यासी को लाभ पहुँचेगा। जिनका वर्णन इस प्रकार से है —:

1. अभ्यास की अवधि को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये।
2. क्षमतानुसार अभ्यास करना चाहिये।
3. प्रजनन अंगों के रोग से पीड़ित व्यक्ति इस अभ्यास को न करे।
4. उत्सर्जन तन्त्र सम्बन्धी गड़बड़ी वाले व्यक्ति भी इस अभ्यास को न करे।
5. हृदयरोगी एवं उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों को ये अभ्यास नहीं करना चाहिये।
6. हार्निया, बवासीर रोग से ग्रसित व्यक्ति भी इस क्रिया का अभ्यास न करे।
7. अनुभवी एवं योग्य व्यक्ति के निर्देशानुसार उसके संरक्षण में ही इस क्रिया का अभ्यास करना उचित रहता है।
8. अभ्यास करते समय पूरी एकाग्रता स्वाधिष्ठान चक्र पर लगाकर रखनी चाहिये।
9. अभ्यास के दौरान प्रयोग की जाने वाली सामग्री शुद्ध एवं उचित होनी चाहिये।
10. अभ्यास करते समय जल्दबाजी बिल्कुल नहीं करनी चाहिये।

18.5 शक्तिचालिनी मुद्रा

18.5.1 नामकरण — शक्तिचालिनी मुद्रा का वास्तविक अर्थ कुण्डलिनी शक्ति के चालन से है। इस मुद्रा में कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर उसका चालन किया जाता है इसलिये इस मुद्रा को शक्तिचालिनी मुद्रा कहते हैं।

स्वात्माराम सूरी जी द्वारा रचित हठप्रदीपिका के तृतीय अध्याय के 100—118 श्लोक तक हमें शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन इस प्रकार से मिलता है —

वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों से दोनों पावों के टकनों को दृढ़ता से पकड़े और उससे कंद को जोर से दबायें। साधक वज्रासन पर बैठकर कुण्डलिनी को चलाने की क्रिया करे। अनन्तर भस्त्रिका कुम्भक करें। इससे कुण्डलिनी शीघ्र जगती है।

साथ ही घेरण्ड मुनि द्वारा रचित घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय के 61—72 श्लोक तक शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन इस प्रकार से मिलता है —

बालिस्तभर चौड़ा चार अंगुल लंबा कोमल वस्त्र नाभि पर लगाकर कटिसूत्र से बांधें। शरीर में भष्म लगाकर सिद्धासन पर बैठें और प्राण को खींचकर अपान से उक्त करें। जब तक सुषुम्ना द्वारा से चलती हुई वायु प्रकाशित न हो तब तक अश्विनी मुद्रा द्वारा गुह्य को

संकुचित करें। इस प्रकार वायु से रूकने से कुम्भक द्वारा सर्प रूपिणी कुंडलिनी जाग्रत होकर मार्ग में ऊपर खड़ी हो जाती है। मूलाधार में जो कुंडलिनी साढ़े तीन फेरा लगाए हुए सर्पिणी के रूप में सो रही है उसके सोते रहने पर जीव पशु की अवस्था में रहता है। इसलिए जब तक ज्ञान उत्पन्न न हो तब तक अभ्यास करते रहना चाहिए। जिस प्रकार कुंजी से ताला खुलने पर ही किवाड़ खुलता है उसी प्रकार कुंडलिनी के जाग्रत होने पर ही ब्रह्मरन्ध्र खुल सकता है। नाभि को वस्त्र से लपेटकर एकांत में इसका अभ्यास करें। नग्न रहकर बाहर इस मुद्रा का अभ्यास निषिद्ध है।

शक्तिचालिनी मुद्रा के अभ्यास के बिना योनिमुद्रा सिद्ध नहीं हो सकती। पहले इस शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास करें, फिर योनी मुद्रा का। हे चण्डकपाल ! इस प्रकार यह शक्तिचालिनी मुद्रा जो मैंने कही है इसे प्रयत्न पूर्वक गोपनीय रखते हुए नित्य प्रति अभ्यास करें। जो भी इसका अभ्यास करता है उसे विग्रह सिद्ध सहित सर्व सिद्धियां प्राप्त होती हैं और सभी रोगों का नाश होता है।

18.5.3 विधि –

1. सर्वप्रथम दण्डासन की स्थिति में बैठते हैं।
2. दोनों पैर सीधे सामने की ओर दोनों पैर आपस में मिलाकर रखते हैं।
3. दोनों हाथों को नितम्बों के बगल में रखते हैं।
4. कमर गर्दन एक सीध में रखते हैं।
5. इसके पश्चात् दोनों हाथों को दायें नितम्ब के पास रखते हैं।
6. दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर ऐड़ियों को नितम्बों के नीचे लाते हैं।
7. वज्रासन की स्थिति में बैठते हैं।
8. वज्रासन की स्थिति में दोनों अंगुठों को आपस से मिलाकर रखते हैं। दोनों ऐड़ियों को नितम्बों के बगल में फैलाते हैं, सामने से दोनों घुटनों को आपस में मिलाकर रखते हैं। कमर गर्दन सीधी रखते हैं।
9. वज्रासन में स्थित होने के पश्चात् अश्विनी मुद्रा व मूलबन्ध का अभ्यास करते हैं।
10. तत्पश्चात् दोनों हाथों से दोनों पाँवों के टखनों को दृढ़ता से पकड़ते हैं।
11. फिर कन्द को जोर से दबाते हैं। (कन्द का स्थान मूल स्थान से 9 इंच ऊपर बताया गया है। यह 3 इंच विस्तार वाला, कोमल, सफेद तथा वस्त्र में लिपटा हुआ जैसा प्रतीत होता है।)
12. इसके पश्चात् भस्त्रिका प्राणायाम करने का विधान बताया गया है।
13. इसी के साथ-साथ नाभि मण्डल को जाग्रत करने वाली अन्य क्रियाओं के अभ्यास को करने का विधान भी ग्रन्थों में बताया गया है।

जैसे – उड्डियान बन्ध, नौलि। ये क्रियाएँ मणिपुर चक्र को जाग्रत करती हैं। इन क्रियाओं का सीधा प्रभाव सूर्य चक्र पर पड़ता है। यह सुषुम्ना के मार्ग को खोलता है।

बाह्य कुम्भक के साथ ये अभ्यास किया जाता है। क्षमतानुसार यह अभ्यास करना चाहिये। इन क्रियाओं के अभ्यास में मूलबन्ध स्वतः ही लग जाता है। चूंकि कुण्डलिनी शक्ति का स्थान मूलाधार चक्र हो तो ये क्रिया इसमें सहायक भी होती है।

14. इस प्रकार क्रिया करके सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति पर दबाव पड़ता है और वह सुषुप्त शक्ति जाग्रत होकर सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है। और उर्ध्वगामी होकर सहस्रार में शिव स्थान में जाकर शिव से मिल जाती है।

15. प्रारम्भ में इस प्रक्रिया को प्रतिदिन करते हैं। फिर लम्बे अभ्यास के बाद परम स्थिति (पूर्णावस्था) की प्राप्ति सम्भव हो पाती है।

नोट — घेरण्ड संहिता में 9 इंच लंबा और चार अंगुल चौड़ा नरम सफेद कपड़ा नाभि पर पतले धागे से बाँधकर शरीर में भस्म लगाकर सिद्धासन में बैठकर दीर्घ पूरक कर पेट में श्वास भरने को कहा गया है।

तत्पश्चात् उड्डियान बन्ध करके अप्राण वायु को प्राण वायु से मिलाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार से अभ्यास करने से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है।

18.5.4 सावधानियाँ — शक्तिचालिनी मुद्रा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने की विधि है। यह सामान्य प्रक्रिया नहीं है। इस प्रक्रिया में बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। अन्यथा अभ्यासी को परम हानि का सामना भी करना पड़ सकता है। क्रिया के दौरान ध्यान रखने योग्य बातें इस प्रकार से हैं—:

1. अभ्यास खाली पेट करना चाहिये।
2. रोगयुक्त स्थिति में अभ्यास नहीं करना चाहिये।
3. हृदयरोगी, उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप वालों को ये अभ्यास नहीं करना चाहिये।
4. उदर सम्बन्धी रोगों से पीड़ित व्यक्ति इसका अभ्यास न करें।
5. फेफड़े सम्बन्धी रोगी इस अभ्यास को न करें।
6. कमजोर व्यक्तियों के लिये तथा टी0 बी0 के रोगी को भी यह अभ्यास नहीं करना चाहिये।
7. घेरण्ड संहिता में बताई गई विधि के अनुसार खुले बदन शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिये।
8. वस्त्र को लपेटकर एकान्त में बैठकर शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिये।
9. शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिये तभी इसका पूरा लाभ प्राप्त होता है।

18.5.5 लाभ — शक्तिचालिनी मुद्रा हठयोग में वर्णित विभिन्न मुद्राओं में विशेष मुद्रा है। यह मुद्रा हठयोग के परम लक्ष्य कुण्डलिनी शक्ति जागरण में सहायक होती है। इसके अन्य लाभ इस प्रकार से हैं।

1. शक्तिचालिनी मुद्रा सुषुप्त कुण्डलिनी को जाग्रत कर उर्ध्वगामी बनाती है।
2. पाचन संस्थान को सुचारुता प्रदान करती है।
3. इस क्रिया के अन्तर्गत की जाने वाली उड्डियान बन्ध, मूलबन्ध, अश्विनी मुद्राओं के पूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं।
4. दीर्घ पूरक, रेचक फेफड़ों की क्रिया क्षमता को बढ़ाता है।
5. यह क्रिया चेतना को उच्चस्तरीय गति प्रदान करती है।
6. चक्रों के जागरण की प्रक्रिया भी इस मुद्रा द्वारा सम्भव है।
7. सुषुम्ना के अन्दर प्रवाहित होने वाली कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने से पूर्व शक्ति के प्रवाह के लिये सूक्ष्मस्तरीय चक्र, नाड़ियों की शुद्धि भी स्वतः होती चली जाती है।
8. इस अभ्यास से व्यक्ति सामान्य से विशिष्ट बन जाता है।
9. व्यक्ति में मृत्यु को जीत लेने की शक्ति आ जाती है।
10. व्यक्ति में मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। पंचतत्त्वों से निर्मित नाशवान शरीर और ब्रह्माण्ड में स्थित पंचतत्त्वों का रहस्य वह जान लेता है।

11. मूलाधार एवं मणिपुर चक्र की जाग्रति व्यक्ति में दिव्य ज्ञान का प्रवाह कर देती है।
12. शक्तिचालिनी की मुद्रा से साधक को सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।
13. ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, पथ्यकारक भोजन करने वाले, सन्तुलित भोजन करने वाले, तथा शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास करने वाले साधक को 40 दिन में सिद्धि प्राप्ति के लक्षण दिखने लगते हैं।
14. कुण्डलिनी शक्ति के प्रतिदिन चालन से साधक के रोग समाप्त हो जाते हैं।
15. इस अभ्यास से समस्त नाडियों की शुद्धि होती है। 72000 नाडियों में प्राण प्रवाह उचित ढंग से होने लगता है। इसी प्रभाव के कारण कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना में प्रवेश करने में सक्षम हो पाती है। अन्यथा ये सम्भव न था।

अभ्यास हेतु प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न –

- (1) निम्न में से किस मुद्रा का वर्णन हठप्रदीपिका में प्राप्त होता है
 (अ) विपरितकरणी (ब) वज्रोली
 (स) शक्तिचालिनी (द) उपरोक्त सभी
- (2) हठप्रदीपिका में विपरितकरणी मुद्रा का वर्णन कौन से श्लोक में मिलता है।
 (अ) 45 से 46वें (ब) 46 से 47वें
 (स) 45 से 48वें (द) इनमें से कोई नहीं
- (3) हठप्रदीपिका में वज्रोली मुद्रा का वर्णन मिलता है।
 (अ) 82 से 89वें श्लोक में (ब) 90वें श्लोक में
 (स) 81वें श्लोक में (द) उपरोक्त में से किसी में नहीं
- (4) वज्रोली मुद्रा का अभ्यास निम्न रोग में निषेध है।
 (अ) हर्निया व वबासीर में (ब) हृदय रोग में
 (स) प्रजनन सम्बन्धी रोग में (द) उपरोक्त सभी में

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –

- (1) हठप्रदीपिका में शक्तिचालिनी का वर्णन श्लोक में मिलता है।
- (2) शक्तिचालिनी के अभ्यास के बिना मुद्रा सिद्ध नहीं हो सकती है।
- (3) विपरितकरणी मुद्रा में बन्ध नहीं लगता है।
- (4) विपरितकरणी मुद्रा में कमशः व चक्र पर ध्यान किया जाता है।

सत्य और असत्य को चिन्हित करें –

- (1) विपरितकरणी मुद्रा में हमारे शरीर की स्थिति विपरित हो जाती है। (.....)
- (2) वज्रोली मुद्रा ब्रह्मचर्य के पालन के लिए बहुत ही उपयोगी क्रिया है। (.....)
- (3) वज्रोली मुद्रा वज्रा नाडी से सम्बन्धित नहीं है। (.....)
- (4) घेरण्ड संहिता में शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन 61 से 72वें श्लोक में किया है। (.....)

18.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि हठयोग जो कि राजयोग की प्राप्ति में सीढ़ी की तरह काम करने वाला एक साधन रूप योग साधना है, इसमें किस प्रकार से मुद्राओं का वर्णन किया गया है। वैसे यदि देखा जाये तो हठयोग में मुद्राबन्ध के अन्तर्गत कहीं पर 24 की

संख्या तो कहीं पर 10 की संख्या में मुद्राओं का वर्णन मिलता है। संख्या में भिन्नता होने के बावजूद भी हठयोग के अभ्यास में मुद्राओं का विशेष महत्व है। इसके अभाव में हठयोग में पूर्णता प्राप्त करना कठिन ही नहीं असम्भव सा लगता है।

प्रस्तुत इकाई में वर्णित विपरीतकरणी मुद्रा, वज्रोलीमुद्रा एवं शक्तिचालिनी मुद्रा ये तीनों अपने आप में विशिष्ट मुद्रा हैं। यह बहुत व्यावहारिक तो नहीं हैं लेकिन इनका प्रभाव बहुत सूक्ष्म और फलदायी है। बिना योग्य गुरु के संरक्षण के ये कठिन एवं रहस्यमय अभ्यास सम्भव नहीं हैं। इसके अभ्यास के लिये अनुभवी गुरु का मार्गदर्शन अत्यन्त आवश्यक है। केवल सुनकर या पढ़कर इन अभ्यासों को करना हानिकारक भी हो सकता है।

प्रस्तुत इकाई में आपको विस्तार में तीनों मुद्राओं की जानकारी दी गई है। जिसमें मुद्रा के नामकरण विधि, लाभ एवं अभ्यास में रखने वाली सावधानियों के बारे में विस्तार से समझाया गया है। साथ ही हठयोग के ग्रन्थों में कहां पर इन मुद्राओं की चर्चा हमें मिलती है इस बारे में भी समझाया गया है। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों एवं लेखकों के अपने व्यक्तिगत अनुभव होते हैं, जिसके कारण हमें क्रियापद्धति में भिन्नता देखने को मिल जाती है। प्रस्तुत इकाई में इस भिन्नता को भी स्पष्ट करके बताया गया है।

प्रस्तुत इकाई में पाठकों की समस्त जिज्ञासाओं का समाधान करने का प्रयास किया गया है। विषय से अनभिज्ञ नये व्यक्ति इस इकाई से विषय के बारे में उसकी महत्ता के बारे में जान पायेंगे।

18.7 शब्दावली

- श्वास — नासिका द्वार से बाहरी वायु को भीतर लेना।
- प्रश्वास — भीतर की वायु की बाहर निकालना
- दृढ़ता — मजबूती
- जिज्ञासा — जानने की इच्छा
- जिज्ञासु — जानने की इच्छा रखने वाला
- पूर्णतः — पूरी तरह से
- संकोच — सिकोड़ना
- ओज — तेज
- लोलुप्ता — लालच
- दीर्घपूरक — लम्बी श्वास भीतर लेना
- उर्ध्वगामी — ऊपर की ओर गति करने वाली
- पंचतत्त्व — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश (5 तत्व)
- सक्षम — समर्थ
- कुण्डलिनी — शक्तिचालिनी मुद्रा के अन्तर्गत कुण्डलिनी शक्ति को जानना अत्यन्त आवश्यकता है।
- स्वप्नदोष — सामान्य रूप से यह पुरुषों को होता है, यह शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक रोग है। व्यक्ति का अपने मन की विचारधारा और भावना पर नियन्त्रण नहीं रहता और कामुक विचार मन में आते हैं, वासनापूर्ण विचार निद्रा के समय आते हैं, तब उनका प्रभाव इन्द्रियों पर पड़ता है वह कमजोर हो जाती हैं। मानसिक

उद्वेग का प्रभाव प्रजनन इन्द्रियों पर पड़ता है और वीर्य को शरीर से बाहर निकालता है।

18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- बहुविकल्प प्रश्नों के उत्तर –

- (1). द (2). स (3). अ (4). द

- रिक्त स्थानों के उत्तर –

- (1) 100 से 118वें (2) योनि (3) जालन्धर (4) मणिपूर, विशुद्धि व विन्दु

- सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –

- (1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य

18.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घरेण्ड संहिता – स्वामी निरञ्जनानन्द
2. हठप्रदीपिका – कुवल्यानन्द
3. हठयोग प्रदीपिका – स्वामी मुक्तिबोधानन्द
4. आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विपरीतकरणी मुद्रा क्या है? इसके अर्थ को समझाते हुए इससे मिलने वाले लाभों पर प्रकाश डालें।
2. विपरीतकरणी मुद्रा की विधि को विस्तार से समझाते हुए इसके अभ्यास में ली जाने वाली सावधानियों का वर्णन करें।
3. वज्रोली मुद्रा क्या है? इसके अर्थ को समझाते हुए इससे मिलने वाले लाभों पर प्रकाश डालें।
4. वज्रोली मुद्रा की विधि को विस्तार से समझाते हुए इसके अभ्यास में ली जाने वाली सावधानियों का वर्णन करें।
5. शक्तिचालिनी मुद्रा क्या है? इसके अर्थ व विधि को समझाते हुए इससे मिलने वाले लाभों पर व सावधानियों पर प्रकाश डालें।

इकाई 19 – शीर्षक – नाड़ियाँ

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 नाड़ी

19.3.1 नाड़ी शब्द का अर्थ

19.3.2 नाड़ियों की संख्या

19.4 नाड़ियों में प्राण का प्रवाह

19.5 नाड़ियाँ तथा तंत्रिका तन्त्र

19.6 नाड़ियों के अस्तित्व के प्रमाण

19.7 नाड़ियों में असन्तुलन

19.8 स्वर और नाड़ियाँ बदलने की क्रियाएं

19.9 सारांश

19.10 शब्दावली

19.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

19.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

19.13 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते ही हैं कि हठयोग विद्या शरीर को साधते हुए मन को साधने की प्रक्रिया है। यह शरीर से प्रारम्भ होकर मन के स्तर में कार्य करने वाली पद्धति है। कहा भी गया है कि 'केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते' अर्थात् केवल राजयोग की प्राप्ति के लिये ही हठ विद्या का उपदेश दिया गया है।

शारीरिक स्तर पर यदि बात की जाये तो हमें वैज्ञानिक स्तर से ज्ञात होता है। कि कोशिका से विकसित होते हुए ये मानव शरीर का रूप लेता है। परन्तु योग के अनुसार ये विचारधारा अलग ही रूप से कार्य करती है। पंचकोश एवं तीन शरीर की अवधारणा के अनुसार शरीर के निर्माण की चर्चा हमें योग में मिलती है। इसके साथ-साथ हमें शरीर में चक्र, नाड़ी, ग्रन्थियाँ आदि की भी जानकारी सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत हठयोग के अनुसार प्राप्त होती है। जिसमें से बहुत ही महत्वपूर्ण विषय नाड़ियों के बारे में विस्तार से जानकारी आपको प्रस्तुत इकाई में दी जा रही है। जिसे पढ़कर आप स्थूल शरीर की नाड़ियों और सूक्ष्म शरीर की नाड़ियों में अन्तर ज्ञात कर पायेंगे, साथ ही योग क्षेत्र में इनकी क्या महत्ता है इस बारे में भी आपको विस्तार से जानकारी प्राप्त होगी। विषय से सम्बन्धित समस्त जिज्ञासाओं की सन्तुष्टि आपको प्रस्तुत इकाई को पढ़कर प्राप्त होगी।

नाड़ियों को समझने के लिये और उनके अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिये यह जानना आवश्यक है कि वे शारीरिक नहीं हैं जिसके कारण इन्हें देखा नहीं जा सकता है। नाड़ियाँ ऐसी बुनियादी शक्ति होती हैं जो हमारे जीवन और चेतना को उत्प्रेरित करती हैं।

19.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़कर आप जान पायेंगे कि –

- योग ग्रन्थों में बताये गये नाड़ियों के स्वरूप के बारे में।
- नाड़ियों के प्रकार के बारे में।
- नाड़ियों के कार्यों के बारे में।
- मानव शरीर में नाड़ियों की उपयोगिता के बारे में।
- योग में नाड़ियों के महत्व के बारे में।
- प्राण और नाड़ियों के सम्बन्ध के बारे में।
- तीन महत्वपूर्ण नाड़ियों के बारे में विस्तार से जानकारी।
- श्वास एवं नाड़ियों में सम्बन्ध।
- नाड़ियों का तंत्रिका तंत्र से सम्बन्ध।
- नाड़ियों में असन्तुलन एवं इससे होने वाली समस्याएँ।
- नाड़ियों के अस्तित्व के प्रमाण।

19.3 नाड़ी

नाड़ियों के अस्तित्व पर विश्वास करने से पूर्व उनके विषय में जानना आवश्यक है। इन्हें अनुभव स्तर पर जानना तभी सम्भव हो पाता है जब व्यक्ति की चेतना एक विशेष स्थिति में आती है। इसकी शक्ति को शक्ति प्रवाह के रूप में जाना जाता है, अतीन्द्रिय स्तर पर नाड़ियों के प्रवाह को देखकर ज्ञात होता है कि इनके अनेक रंग, ध्वनि प्रकाश आदि हैं। नाड़ियाँ शरीर के सभी कार्यों एवं प्रक्रियाओं के साथ कार्य करती हैं, ये शरीर और मन से अलग नहीं हैं। जिस प्रकार बिजली के तारों द्वारा करन्ट को अनेकों स्थानों में प्रवाहित किया जाता है। ठीक उसी प्रकार नाड़ियाँ सम्वेदनाओं एवं प्राण को प्रवाहित करती हैं। स्थूल शरीर में इन्हें नर्व के रूप में भी जाना जा सकता है जो रक्त प्रवाह में सहायक होती है। परन्तु योग में वर्णित जिन नाड़ियों की बात हम कर रहे हैं वे नग्न आँखों से नहीं देखी जा सकती क्योंकि वे सूक्ष्म होती हैं और उनमें सूक्ष्म प्राण शक्ति ही प्रवाहित होती है। सामान्यतः शरीर में पायी जाने वाली नर्व मृत्यु के बाद में शरीर में देखी जा सकती है परन्तु यौगिक नाड़ियाँ केवल जीवित शरीर में ही पायी जाती हैं। मृत्यु के बाद ये शरीर में नहीं पाई जाती हैं।

19.3.1 नाड़ी शब्द का अर्थ — नाड़ी शब्द संस्कृत के 'नाड्य' धातु से बना है जिसका अर्थ है — गतिमान रहना। जब तक व्यक्ति जीवित रहता है तब तक व्यक्ति में ये नाड़ियाँ संवेदनाओं, प्राण, उद्वेगों आदि को सतत् प्रवाहित करती रहती हैं, इसीलिये इन्हें नाड़ी कहा जाता है। कहा जा सकता है कि योग ग्रन्थों में नाड़ी शब्द का प्रयोग ऐसे अंगों के लिये हुआ है जो खाद्य पदार्थों, पेय, रक्त, लसीका वायु और नाड़ी संवेगों के परिवहन के लिये बड़े या छोटे मार्ग के रूप में काम करते हैं।

19.3.2 नाड़ियों की संख्या — हठयोग के विभिन्न ग्रन्थों में नाड़ियों की संख्या अलग-अलग बताई गई है। वास्तव में हमारे शरीर में नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है, फलतः ये असंख्य मानी जाती हैं। फिर भी विद्वानों एवं सूक्ष्मदर्शियों ने अपने अनुभव से इन्हें देखा और इनकी संख्या का वर्णन किया है, विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित नाड़ियों की संख्या का वर्णन इस प्रकार से है —

शिवसंहिता के अनुसार — शिवसंहिता में $3\frac{1}{2}$ लाख नाड़ियों की चर्चा मिलती है।

सार्धलक्षत्रयं नाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम् ।

प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश ॥ (2/13 शि० सं०)

अर्थात् — मानव शरीर में साढ़े तीन लाख (3,50,000) नाड़ियाँ हैं, उनमें प्रधान रूप से चौदह नाड़ियाँ ही मुख्य हैं ।

वशिष्ट संहिता के अनुसार — वशिष्ट संहिता में 72000 नाड़ियों की चर्चा मिलती है। नाड़ियों की कुल संख्या में हमें भेद मिलता है परन्तु उन सभी में 14 नाड़ियाँ मुख्य मानी गई हैं। इन 14 नाड़ियों में से भी तीन नाड़ियों को विशेष माना गया है। तीन नाड़ियों में से एक मुख्य है। जिनका नाम इस प्रकार से है —

- | | | |
|----------------|--------------|---------------|
| 1. इड़ा | 6. कुहू | 11. वारूणी |
| 2. पिंगला | 7. सरस्वती | 12. अलंबुशा |
| 3. सुषुम्ना | 8. पूषा | 13. विश्वोदरा |
| 4. गांधारी | 9. शंखिनी | 14. यशस्विनी |
| 5. हस्तिजिह्वा | 10. पयस्विनी | |

उपरोक्त 14 नाड़ियों में तीन मुख्य नाड़ियाँ हैं—

(1) इड़ा (2) पिंगला (3) सुषुम्ना

उपरोक्त तीन नाड़ियों में से सबसे प्रमुख नाड़ी है— 'सुषुम्ना'। सुषुम्ना के भीतर भी तीन और नाड़ियाँ उपस्थित रहती हैं। वज्रा नाड़ी, चित्रा नाड़ी एवं ब्रह्म नाड़ी। इनमें ब्रह्म नाड़ी सबसे सूक्ष्म होती है।

ऊपर वर्णित 14 नाड़ियों में मुख्य तीन इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ी के अतिरिक्त समस्त नाड़ियाँ के स्थान एवं कार्य क्षेत्रों का वर्णन शिव संहिता के द्वितीय पटल के 29-30 श्लोक में इस प्रकार मिलता है —

अन्याः सन्त्यपरा नाड्यो मूलाधारात्समुत्थिताः ।

रसना मेढ्र नयनं पादाङ्गुष्ठे च श्रोत्रकम् ॥

— (2/29 शिव संहिता)

कुक्षिकक्षां गुष्ठवर्णं सर्वाङ्गं पायुकुक्षिकम् ।

लब्धान्ता वै निवर्तन्ते यथादेश समुद्भवाः ॥

— (2/30 शिव संहिता)

अर्थात् — इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना के अतिरिक्त अन्य दूसरी नाड़ियाँ भी मूलाधार से उत्पन्न हुई हैं। जिह्वा, लिंग, नेत्र, दोनों पादाङ्गुष्ठ, कान तथा कांख, हाथ का अंगूठा, गुदा एवं पेट, इन सब अंगों में इनका अन्त हुआ है। इस प्रकार सभी नाड़ियाँ मूलाधार से उत्पन्न होकर अपने-अपने गन्तव्य को प्राप्त होकर निवृत्त हो जाती हैं।

जैसा कि आपने जाना कि हमारे शरीर में तीन मुख्य नाड़ियाँ हैं इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना। आइये इनके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करें —

योगियों ने इन नाड़ियों के अस्तित्व एवं इनकी शक्ति को पहचानकर उनके सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना को शरीर, मन एवं आत्मा के रूप में वर्णित किया है। तीसरी शक्ति पहली और दूसरी शक्ति के बीच सन्तुलन स्थापित होने से उत्पन्न होती है। सामान्यतः व्यक्ति अपने पूरे जीवन में इड़ा एवं पिंगला अर्थात् शरीर और मन के स्तर में ही कार्य करता है, तीसरी शक्ति सुषुप्त रहती है। जिसे यौगिक अभ्यास द्वारा जागृत किया जाता है।

इड़ा नाड़ी — इड़ा नाड़ी शीतल नाड़ी होती है। ये हमारे बायें नासारन्ध्र द्वारा प्रवाहित होती है। इसे चन्द्र, शीत, कफ, अपान, रात्रि, शक्ति, जीव, तामस आदि नामों से भी जाना जाता है। चेतना को अन्तर्मुखी बनाती है। इसका सम्बन्ध परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र से होता है, इसलिये इससे सम्बन्धित क्रियाविधि को इड़ा नाड़ी प्रभावित करती है। इड़ा का उद्गम स्थान हमारी मेरुदण्ड का निचला भाग मूलाधार चक्र है। यहाँ से होती हुई ये आज्ञा चक्र तक फैली होती है। मूलाधार से इड़ा नाड़ी बाईं ओर से वक्राकार विशुद्धि चक्रों को पार करती हुई आज्ञा चक्र पर जाकर बाईं ओर विलीन हो जाती है। इड़ा नाड़ी का रंग नीला होता है।

शिव संहिता में द्वितीय पटल के 25वें श्लोक में इड़ा नाड़ी की स्थिति एवं कार्यक्षेत्र को इस प्रकार से बताया है —

इड़ा नाम्नी तु या नाड़ी वाममार्गे व्यवस्थिता।

मध्यनाड़ी समाश्लिष्य वाम नासापुटे गता॥

— (2/25 शिव संहिता)

अर्थात् इड़ा नाम की नाड़ी जो कि वाम भाग में स्थित है, वह सुषुम्ना नाड़ी से लिपटाकर बायें नासापुट तक गयी है।

पिंगला नाड़ी — पिंगलानाड़ी उष्णता प्रदायिनी होती है। यह दायें नासारन्ध्र में प्रवाहित होती है। इसे सूर्य, उष्ण, पित्त, प्राण, दिन, शिव, रजस एवं ब्रह्म आदि नामों से भी जाना जाता है। पिंगला नाड़ी व्यक्ति में जोश उत्साह उत्पन्न करती है। यह चेतना को बहिर्मुखी बनाती है। इसका सम्बन्ध अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र से होता है, इसीलिये इससे सम्बन्धित क्रियाविधि को पिंगला नाड़ी प्रभावित करती है। इसका उद्गम स्थान मूलाधार चक्र के दाहिनी ओर है वहाँ वक्राकार होती हुये पिंगला नाड़ी आज्ञा चक्र के दाहिनी ओर पहुँचकर समाप्त हो जाती है। पिंगला नाड़ी का रंग लाल होता है।

शिव संहिता के द्वितीय पटल के 26वें श्लोक में पिंगला नाड़ी की स्थिति एवं कार्यक्षेत्र को बताया गया है जो कि इस प्रकार से है —

पिंगला नाम या नाड़ी दक्षमार्गे व्यवस्थिता।

सुषुम्नां सा समाश्लिष्य दक्ष नासापुटे गता॥

— (2/26 शिव संहिता)

अर्थात् पिंगला नाम की नाड़ी जो दाहिने मार्ग में स्थित है, वह सुषुम्ना से लिपटकर दाहिने नासापुट तक गयी हुई है।

सुषुम्ना नाड़ी — इसकी शक्ति अनन्त है। जब इड़ा, पिंगला नाड़ी में सन्तुलन स्थापित हो जाता है तब यह जाग्रत होती है। यह मेरुदण्ड के बीच में प्रवाहित होती है। इसकी जाग्रत अवस्था में मस्तिष्क पूरा क्रियाशील हो जाता है। हठयोग में वर्णित कुण्डलिनी शक्ति भी इसी नाड़ी के भीतर उपस्थित सबसे सूक्ष्म अन्तिम नाड़ी ब्रह्मनाड़ी में ही गति करते हुये सहस्रार में शिव से जाकर मिलती है।

सुषुम्ना नाड़ी को तमोगुण से सम्बन्धित माना जाता है। सुषुम्ना नाड़ी में प्राण संचार के समय अवरोध उत्पन्न करने वाली तीन ग्रन्थियाँ भी इसमें पायी जाती हैं, जिन्हें हठप्रदीपिका में इस प्रकार से समझाया गया है — (हठप्रदीपिका 3/70,71)

(1) ब्रह्म ग्रन्थि — (अनाहतचक्र के भीतर हृदय क्षेत्र में)

(2) विष्णु ग्रन्थि — (विशुद्धिचक्र के भीतर कण्ठ के क्षेत्र में)

(3) रुद्रग्रन्थि — (आज्ञाचक्र के भीतर भूमध्य के क्षेत्र में)

हठप्रदीपिका के तृतीय अध्याय के चौथे श्लोक में वर्णन मिलता है कि सुषुम्ना को अनेक नामों से जाना जाता है जिसका वर्णन इस प्रकार से है – शून्यपदवी, ब्रह्मरन्ध्र, महापथ, श्मशान, शाम्भवी, मध्यमार्ग।

सुषुम्ना के उपरोक्त विभिन्न नाम उसके स्वरूप, उद्देश्य तथा भूमिका आदि आयामों के परिचायक हैं। आइये इन्हें विस्तार से जानें –

(1) शून्यपदवी – इससे उस परम तत्व का बोध होता है, जो वर्णनातीत है। अतः शून्य कहा गया है। सुषुम्ना इस परम तत्व को प्राप्त कराने में सहायक होती है अतः इसे शून्यपदवी के नाम से अभिहित किया जाता है।

(2) ब्रह्मरन्ध्र – ब्रह्म शब्द परम तत्व का वाचक है, तथा रन्ध्र का अर्थ है मार्ग। इस प्रकार जिस मार्ग का अनुसरण कर ब्रह्म की प्राप्ति हो उसे ब्रह्मरन्ध्र कहा जाता है।

(3) महापथ – महा का अर्थ होता है महान और पथ का अर्थ होता है मार्ग। इड़ा और पिंगला की तुलना में सुषुम्ना को महापथ कहा गया है, क्योंकि इसी मार्ग का अनुवर्तन कर परम तत्व अर्थात् महान तत्व (ब्रह्म) तक पहुँचा जा सकता है।

(4) श्मशान – भारतीय पौराणिक मान्यताओं के अनुसार भगवान शिव को भूतनाथ भी कहा जाता है, जो कि श्मशान के प्रति विमुखता प्रदान करता है। श्मशान में जाकर सांसारिक आसक्ति समाप्त हो जाती है। चूँकि सुषुम्ना सांसारिकता से विमुख करके मनुष्य को भूतनाथ अर्थात् शिव तक पहुँचाने में सक्षम है, अतः इसलिये इसे श्मशान कहा गया है।

(5) शाम्भवी – शम्भू अर्थात् शिव। हठयोग में कुण्डलिनी को शक्ति के नाम से भी जाना जाता है। कुण्डलिनी शक्ति शम्भू यानि कि शिव से मिलने के लिये जिस मार्ग का अनुसरण करती है वह सुषुम्ना है। इसलिये उस मार्ग को अर्थात् सुषुम्ना को शाम्भवी कहा जाता है।

(6) मध्यमार्ग – हठयोग के अनुसार शरीर में उपस्थित अनेक नाड़ियों में इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ महत्वपूर्ण हैं। इड़ा का स्थान बायीं ओर, पिंगला का स्थान दाहिनी ओर तथा सुषुम्ना का स्थान इन दोनों के मध्य में है। हठयोग के उच्च अभ्यासों में सुषुम्ना मार्ग का अनुसरण करना अत्यन्त आवश्यक है। सुषुम्ना का स्थान इड़ा एवं पिंगला नाड़ी के मध्य में होने के कारण उसे मध्यमार्ग कहा गया है।

जब सुषुम्ना में गति होती है, वह अपना कार्य करना शुरू करती है तब इड़ा एवं पिंगला नाड़ी की क्रिया रुक जाती है या हम कह सकते हैं कि इनकी क्रिया नियन्त्रित हो जाती है।

शिव संहिता के द्वितीय पटल के 27वें श्लोक में सुषुम्ना नाड़ी की स्थिति एवं कार्यक्षेत्र को इस प्रकार से बताया गया है –

इड़ापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना या भवेत्स्वल्प।

षट् स्थानेषु च शट्शक्तिं षट्पदमं योगिनो विदुः॥

– (2/27 शिव संहिता)

अर्थात् – जो नाड़ी इड़ा और पिंगला के बीच में स्थित है वह निश्चित ही सुषुम्ना कही गयी है। योगीजन इसी सुषुम्ना के छः स्थानों पर छः शक्तियों और छः चक्रों को जानते हैं।

सुषुम्ना के भीतर स्थित चित्रा नाड़ी का वर्णन शिव संहिता के द्वितीय पटल के 161–163 श्लोक में इस प्रकार से किया गया है–

यस्याः स्मरणमात्रेण ब्रह्मज्ञत्वं प्रजायते।

पापक्षयश्च भवाति न भूयः पुरुषो भवेत्॥

प्रवेष्टितं चलाङ्गुष्ठं मुखे स्वस्य निवेशयेत् ।
 तेनात्र न वहत्येव देहचारी समीरणः ॥
 तेन संसारचक्रेडास्मिन् न भ्रमन्त्येव सर्वदा ।
 तदर्थं च प्रवर्तन्ते योगिनः प्राणधारणे ॥

अर्थात् — भगवान् शिव पार्वती जी से कहते हैं कि हे प्रिये पार्वती! सुषुम्ना में स्थित नाड़ी चित्रा कही जाती है। मेरे मतानुसार उसी में ब्रह्मरन्ध्र आदि की कल्पना करनी चाहिये। चित्रा नाड़ी के स्मरण मात्र से ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है, और पापों का नाश हो जाता है, तथा पुनः इस संसार में नहीं आना पड़ता। अपने मुख में दाहिने हाथ के अंगूठे को प्रविष्ट कर उसे स्थापित कर देना चाहिये। इस अभ्यास से ही पेट में प्रवाहित होने वाली वायु ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर हो जाती है। योगीजन इसी अभ्यास के कारण इस संसार चक्र में कभी भी भ्रमित नहीं होते हैं। इसीलिये योगीजन इसे प्राण धारणा का अभ्यास करते हैं। कहा भी गया है कि इड़ा, पिंगला के बीच में सुषुम्ना नाड़ी योनि के मध्य तक जाती है, वहीं सुषुम्ना के आधारमण्डल के बीच में ब्रह्मरन्ध्र है, जो साधक इसे जान लेता है वह बुद्धिमान साधक कहलाता है, और फिर वह बुद्धिमान साधक कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं कि इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना समस्त नाड़ियों में प्रमुख नाड़ियाँ होती हैं। इन्हें क्रमशः गंगा, यमुना और सरस्वती के नाम से जाना जाता है। सांसारिक मान्यतानुसार जिस प्रकार गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों नदियों के संगम में स्नान करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है, ठीक उसी प्रकार इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के संगम में स्नान करने से भी व्यक्ति की मुक्ति होती है।

19.4 नाड़ियों में प्राण का प्रवाह —

आपने जाना कि हमारा दायाँ नासाछिद्र में पिंगला नाड़ी तथा बायाँ नासाछिद्र में इड़ा नाड़ी उपस्थित होती है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीनों नाड़ियाँ हमारे शरीर में एक के बाद एक गति करती हैं। प्राण इन्हीं 72000 हजार आदि समस्त नाड़ियों द्वारा पूरे शरीर में भ्रमण करता है।

किसी विशेष समय में कौन सी नाड़ी क्रियाशील है इसे नासिका में चल रहे श्वास के प्रवाह से देखा जा सकता है। जब दाहिने नासाछिद्र से श्वास तेज चल रहा हो तो उस समय पिंगला नाड़ी क्रियाशील होती है और जब बायें नासाछिद्र से श्वास तेज गति कर रहा हो तो उस समय इड़ा नाड़ी क्रियाशील होती है। यदि दोनों नासाछिद्रों से समान रूप से श्वास गति कर रही होती है तो उस समय सुषुम्ना नाड़ी क्रियाशील रहती है।

पिंगला नाड़ी के प्रवाह के समय शारीरिक कार्यों, भोजन के पाचन, दौड़-भाग आदि के लिये अधिक प्राण शक्ति मिलती है। उस समय व्यक्ति बहिर्मुखी प्रकृति वाला हो जाता है। साथ ही उस समय शरीर में गर्मी रहती है। जब शरीर में इड़ा नाड़ी का प्रवाह रहता है उस समय मनः शक्ति प्रधान रहती है। मन अन्तर्मुखी हो जाता है। मानसिक कार्य इस समय करने से लाभ मिलता है। निद्रा के समय भी इड़ा नाड़ी की क्रियाशीलता लाभप्रद होती है। इड़ा नाड़ी की गतिशीलता व्यक्ति को शान्त, प्रसन्न, स्थिर बनाती है।

मानवीय व्यवहार की समस्त गतिविधियाँ नाड़ियों के प्रवाह से प्रभावित होती हैं, लेकिन यौगिक अभ्यासों द्वारा इसकी गति को अपने अनुसार बदला भी जा सकता है। इसके लिये प्राणायाम बहुत ही प्रभावी अभ्यास है। उदाहरण के लिये यदि इड़ा नाड़ी क्रियाशील है और व्यक्ति को कोई शारीरिक जोशीला कार्य करना हो तो प्राणायाम द्वारा पिंगला नाड़ी को

क्रियाशील किया जा सकता है। इसके विपरीत यदि पिंगला नाड़ी चल रही हो और व्यक्ति को नींद, पूजा-पाठ आदि कार्य करने हों तो प्राणायाम द्वारा इड़ा नाड़ी को क्रियाशील बनाया जा सकता है। इड़ा और पिंगला नाड़ी में सन्तुलन स्थापित करने के लिये षट्कर्मों का अभ्यास करना लाभप्रद रहता है। इसके लिये 24 घंटे में 12 घंटे पिंगला तथा 12 घंटे इड़ा नाड़ी क्रियाशील रहनी आवश्यक होती है। जब ये दोनों नाड़ी शुद्ध एवं संतुलित हो जाती हैं तथा मन नियन्त्रण में आ जाता है तो उस समय सुषुम्ना नाड़ी प्रवाहित होने लगती है। ध्यान में सफलता के लिये सुषुम्ना का प्रवाहित होना आवश्यक होता है। जब पिंगला ज्यादा क्रियाशील होती है तो शरीर अशान्त रहता है जब इड़ा ज्यादा क्रियाशील हो तो मन कार्य करेगा जब सुषुम्ना क्रियाशील होती है तो कुण्डलिनी शक्ति की जाग्रति की क्रिया होती है।

19.5 नाड़ियाँ तथा तंत्रिका तन्त्र

नाड़ियाँ हमारे शरीर के स्वैच्छिक तंत्रिका तन्त्र के दो पक्षों अनुकम्पी तथा परानुकम्पी तंत्रिका तन्त्र को प्रभावित करती है। पिंगला नाड़ी अनुकम्पी तंत्रिका तन्त्र से सम्बन्धित होती है और इड़ा नाड़ी परानुकम्पी तंत्रिका तन्त्र से सम्बन्धित होती है। अनुकम्पी तंत्रिका तन्त्र बाह्य वातावरण से सम्बन्धित गतिविधियों के उद्दीपन तथा त्वरण के लिये उत्तरदायी होता है। अनुकम्पी तंत्रिकाएँ हृदयगति को बढ़ाने, रक्त वाहिनियों को फैलाने, श्वसन गति को तेज करने के साथ-साथ आँखों, कानों एवं अन्य अंग अवयवों की कार्य क्षमता को बढ़ाने का कार्य करती है। परानुकम्पी तंत्रिका तन्त्र अनुकम्पी तंत्रिका तन्त्र के ठीक विपरीत कार्य करती है जैसे – हृदय गति को मन्द करना, रक्तवाहिनियों को सिकोड़ना, खास गति धीमी करना आदि कार्य। योगाभ्यास द्वारा इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों पर नियन्त्रण करके तंत्रिका तन्त्र के कार्यों पर भी नियन्त्रण एवं सजगता स्थापित की जा सकती है।

19.6 नाड़ियों के अस्तित्व के प्रमाण

हठयोग विद्या के अन्तर्गत समस्त क्रियाकलाप यहाँ तक कि कुण्डलिनी जागरण जैसी उच्चतम प्रक्रियाएँ नाड़ियों की गतिविधियों से ही प्रभावित रहती हैं। अतः वैज्ञानिक मान्यता हेतु शक्ति-प्रवाहों के अतीन्द्रिय माध्यमों अर्थात् नाड़ियों के अस्तित्व को सिद्ध करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। हठयोगी ये मानते हैं कि मानव शरीर के अन्दर नाड़ी मण्डल शक्ति प्रवाह का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इसी के द्वारा शरीर एवं मन दोनों को ऊर्जा प्राप्त होती है।

मनुष्य के शरीर में हजारों नाड़ियाँ हैं किन्तु इनमें तीन प्रमुख हैं इनके नाम हैं इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना। इन नाड़ियों का आधार शरीर अवश्य है किन्तु इनका कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है। ये मात्र कार्यात्मक हैं। ये नाड़ियाँ गतिशील, सक्रिय, स्फूर्तिदायक, शरीर एवं मन को शक्ति प्रदान करने वाली हैं। तथा इनका स्नायुओं, रक्त कोषों तथा शरीर के अन्य सभी अंगों से गहन सम्बन्ध है। इन नाड़ियों की कोई शारीरिक संरचना न होने पर भी योगियों के अनुसार इनका अस्तित्व निश्चित रूप से है और उन्होंने शरीर में इन नाड़ियों के मार्ग तथा उन पर इनके पड़ने वाले प्रभावों का भी स्पष्ट वर्णन किया है।

‘इन्टरनेशनल एसोसियेशन फॉर रिलीजन एण्ड पैरासाइकॉलोजी’ के अध्यक्ष डॉ० हिरोशी मोटोयामा नाड़ियों, आक्यूपंचर रेडियन, एवं चक्रों के अस्तित्व को प्रमाणित करने हेतु निरंतर कार्यरत है। उन्होंने योग के विज्ञान पर प्रकाश डालने के लिये एवं इस ज्ञान को वैज्ञानिक स्तर पर सिद्ध करने के लिये कुछ यन्त्रों का निर्माण किया है। उनके अनुसार “पिछले दो

वर्षों से योग में वर्णित चक्रों और नाड़ियों की अनेक पुस्तकों के अध्ययन के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि आसन, मुद्रा, प्राणायाम और धारणा के विकास का आधार नाड़ी मण्डल का जाल ही है।”

योग के अनुसार चक्र अतीन्द्रिय शक्ति को शारीरिक शक्ति एवं शारीरिक शक्ति को अतीन्द्रिय शक्ति में बदलने का कार्य करते हैं। इसका माध्यम नाड़ियाँ ही हैं। चक्रों और नाड़ियों के जो क्षेत्र बतलाये गये हैं वहाँ अनेक आक्यूपंचर मेरिडियन भी उपस्थित हैं। उदाहरण के लिये मेरूदण्ड में ‘गवर्नर वेसेल’ (नियामक वाहिका) सुषुम्ना के सदृश तथा शरीर के मध्य स्थित कन्सेप्शन वेसेल (संकल्पन वाहिका) का प्रयोग कृण्डलिनी अभ्यास में होता है। अनेकानेक मेरिडियन किसी चक्र में आरम्भ या समाप्त होते हैं।

डॉ० हिरोशी मोटोयामा ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि नाड़ियों का अस्तित्व है। और यह ऊर्जा प्रवाह जिसे हम प्राण कहते हैं, की वाहक होती है।

19.7 नाड़ियों में असन्तुलन

नासिका में चलने वाला श्वास नाड़ियों से सम्बन्धित रहता है। हम कह सकते हैं कि हमारे भौतिक शरीर के अस्तित्व का कारण एक ऐसी ऊर्जा का प्रवाह है, जिसमें भौतिक तथा अतीन्द्रिय दोनों प्रकार की क्षमता है। स्वाभाविक श्वसन का नाड़ियों से गहनतम सम्बन्ध है। पिंगला की क्रियाशीलता बायें मस्तिष्क से तथा इड़ा की क्रियाशीलता दायें मस्तिष्क से सम्बन्धित है। स्वर योग में भी हमें इन नाड़ियों की गति के अनुसार शरीर एवं मन की स्थिति का पता चलता है।

प्राणायाम में नियन्त्रण स्थापित करके अधिकतम सूक्ष्म स्तरों पर ऐसा अधिकार प्राप्त किया जा सकता है जिससे ऊर्जा मुक्त की जा सकती है, तथा उसे शरीर के उन अंगों में जिन्हे हम शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, स्वस्थ बनाना चाहते हैं तथा जिनका जागरण करना चाहते हैं, में भेजा जा सकता है।

डॉ० आई० एन० रिग० बुखारेस्ट ने रूमानिया ने अपने शोध से यह पता लगाया कि श्वसन और नाड़ियों के प्रवाह से शरीर और मन प्रभावित होते हैं। उन्होंने अपने शोध में पाया कि जिनकी श्वसन प्रक्रिया में, पिंगला नाड़ी की प्रधानता थी। ये लोग विशेष प्रकार के श्वसन सम्बन्धि रोगों से ग्रसित थे जैसे— दीर्घकालिक साइनोसाइटिस, कान में संक्रमण, नाक, कान या जीभ की शक्ति की आंशिक या पूर्ण रूप से निष्क्रियता, बारम्बार होने वाली ग्रसनी शोध (फेरिंगाइटिस), स्वरयंत्र शोध (लेरिंगाइटिस), टांसिलाइटिस एवं चीरश्वसनी शोध (क्रॉनिक ब्रॉकाइटिस)।

उन्होंने यह भी पाया कि जिन व्यक्तियों की श्वसन प्रक्रिया में इड़ा नाड़ी की प्रधानता थी, वे स्मृतिलोप(एमनिजिया) बौद्धिक कमजोरी, सिर दर्द, थायरायड ग्रन्थि की अतिक्रियाशीलता, हृदयपात, यकृत की खराबी, आमाशय शोध, कोलाइटिस, पौष्टिक अल्सर, कब्ज तथा जननांगों से संबंधित बीमारियों से ग्रसित थे। साथ ही तनावग्रस्त रोगियों में पिंगला नाड़ी की अधिक क्रियाशीलता पायी जाती गयी थी। उनके शोध में नासिका अवरोध दूर करने पर बीमारियों में आराम पाया गया। डॉ० रिग ने अपने शोध से सिद्ध किया कि श्वसन का प्रभाव उसने प्रवाह के अनुरूप शरीर और मन को बहुत हद तक प्रभावित करता है। हम कह सकते हैं कि नाड़ियों में असन्तुलन होने से व्यक्ति रोगग्रसित हो जाता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में श्वसन पर नियन्त्रण करने वाली यौगिक क्रियाओं को जोड़कर रोगोपचार में लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। साथ ही यौगिक अभ्यास प्राणायाम द्वारा अपने अस्तित्व के अधिक सूक्ष्म स्तर पर अतीन्द्रिय ऊर्जा तथा तंत्रिका संस्थान को प्रभावित कर

शरीर तथा मन की स्थिति को भी बदला जा सकता है। नासिका वो माध्यम है जो बीमारी को दूर करने में सहायक सिद्ध होता है। श्वसन की गति, दर, लय, लम्बाई, तथा समय पर नियन्त्रण, नासिका में श्वास एवं प्रश्वास की दर में परिवर्तन तथा कुम्भक के माध्यम से सजगता के सर्वोच्च स्तर में पहुँचने तथा चेतना के स्तर में परिवर्तन हेतु स्नायविक तथा मानसिक प्रक्रियाओं को शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

हम कह सकते हैं कि यौगिक क्रियाओं की प्रमाणिकता स्वतः सिद्ध है, बस आधुनिक विज्ञान में उनको नयी तरह से प्रमाण देने की आवश्यकता है। वर्तमान में उपजे अनेकानेक रोगों के निवारण के लिये भी ये यौगिक प्रक्रियाएँ सहायक होती हैं। शरीर के बाह्य तथा आन्तरिक दोनों तरह के परिवर्तनों में और प्रक्रियाओं में निपूर्णता प्राप्त करने में भी यौगिक क्रियाएँ सहायक सिद्ध होती हैं। यह व्यक्ति को व्यक्तिगत एवं भौतिक स्तर की समस्याओं को निपटाने में भी सहायक सिद्ध होती है। अतः नाड़ियों का संतुलन व्यक्ति के लिये हर दृष्टि से परमावश्यक सिद्ध होता है जो कि यौगिक क्रियाओं से सम्भव है।

19.8 स्वर और नाड़ियां बदलने की क्रियाएँ

- जिस स्वर को चलाना हो नाक के उस छेद (नथुने) पर कुछ देर तक ध्यान लगाने से स्वर चलने लगता है।
- जो स्वर चलाना हो उससे उल्टी दिशा में करवट लेकर लेटने से तथा पसली के नीचे तकिया दबाने से मनचाहा स्वर निकलने लगता है।
- स्वर को अंगूठे से दबाकर चालू स्वर से सांस लेकर दुबारा उसे दबाकर बंद स्वर से सांस निकालें।
- दौड़ लगाने से, मेहनत करने से और प्राणायाम करने से स्वर बदल जाता है।
- जिस स्वर को चलाना हो उससे उल्टी दिशा में रूई या बस्त्र की गोली रखने से वो चलने लगता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

- बहुविकल्पीय प्रश्न –

- (1) नाड़ी शब्द संस्कृत के किस धातु से बना है, जिसका अर्थ गतिमान रहना है।
 (अ) नाट्य (ब) नाड्य
 (स) नाड्यम् (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
- (2) वशिष्ट संहिता के अनुसार नाड़ियों के प्रकार बताये गये हैं।
 (अ) 76 हजार (ब) 71 हजार
 (स) 72 हजार (द) 70 हजार
- (3) शिव संहिता में नाड़ियों की संख्या बताई गई है।
 (अ) साढ़े तीन लाख (ब) साढ़े पाँच लाख
 (स) साढ़े चार लाख (द) साढ़े छः लाख
- (4) यौगिक ग्रन्थों में मुख्य रूप से कितने नाड़ियों को प्रधानता दी गयी है।
 (अ) दो (ब) तीन
 (स) चार (द) पाँच
- (5) इड़ा नाड़ी का रंग होता है।
 (अ) नीला (ब) पीला

(स) लाल

(द) काला

● रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –

- (1) सुषुम्ना के भीतर भी और नाड़ियों उपस्थित रहती है।
- (2) इड़ा नाड़ी का सम्बन्ध तन्त्रिका तन्त्र से होता है।
- (3) पिंगला नाड़ी का रंग होता है।
- (4) पिंगला नाड़ी का सम्बन्ध तन्त्रिका तन्त्र से होता है।

● सत्य और असत्य को चिन्हित करें –

- (1) सुषुम्ना नाड़ी में वज्रा, चित्रा तथा ब्रह्म नाड़ियाँ उपस्थित रहती है। (.....)
- (2) हमारा दाँया नासाछिद्र में पिंगला नाड़ी तथा बाँया नासाछिद्र में इड़ा नाड़ी उपस्थित होती है। (.....)
- (3) सुषुम्ना नाड़ी का सम्बन्ध मेरुदण्ड से नहीं है। (.....)
- (4) ब्रह्म ग्रन्थि का स्थान अनाहत चक्र के भीतर हृदय क्षेत्र में है। (.....)

19.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि नाड़ियाँ क्या होती हैं? यौगिक अभ्यासों में इनकी क्या भूमिका होती है? तथा नाड़ियों का आध्यात्मिक एवं भौतिक लाभ क्या होता है? उपरोक्त इकाई को पढ़कर नाड़ियों से सम्बन्धित समस्त उद्देश्यों की जानकारी आपने प्राप्त की। आपने जाना कि व्यक्ति के जीवन में नाड़ियाँ एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मन एवं शरीर की गतिविधियों में नाड़ियों की क्रियाशीलता को नियन्त्रित करके लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके द्वारा व्यक्ति न केवल इन्द्रिय बल्कि अतिन्द्रिय स्तर पर सूक्ष्म लाभ भी प्राप्त कर पाने में सक्षम होता है।

नाड़ियों की विभिन्न संख्याँ भिन्न-भिन्न क्रियाकलापों में सहायक होती है। प्राण का प्रवाह पूरे शरीर में पहुँचाने में नाड़ियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, यह सूक्ष्म माध्यम सूक्ष्म शक्ति प्राण के प्रवाह का मुख्य साधन है। इसी के कारण योग के परम लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है, अन्यथा ऐसा सम्भव ही नहीं हो सकता था कि व्यक्ति कुण्डलिनी जागरण जैसी दिव्य क्रियाओं में सफलता प्राप्त कर सके। हम कह सकते हैं कि नाड़ियाँ योगाभ्यास में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

19.10 शब्दावली

- अतेन्द्रिय – इन्द्रियों से परे
- गन्तव्य – रास्ता
- वक्राकार – गोल-गोल घुमी हुई
- वर्णनातीत – जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता
- अनुसरण – पीछे चलना
- पौराणिक – पुराना
- मध्य मार्ग – बीच का मार्ग
- प्रविष्ट – प्रवेश
- प्रवृत्ति – स्वभाव
- अवरोध – रुकावट

19.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

• बहुविकल्पित प्रश्नों के उत्तर –

- (1). ब (2). स (3). अ (4). ब (5). अ

• रिक्त स्थानों के उत्तर –

- (1) तीन (2) परानुकम्पी (3) लाल (4) अनुकम्पी

• सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –

- (1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य

19.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कुण्डलिनी योग	–	सत्यानन्द सरस्वती
हठप्रदीपिका	–	स्वात्माराम सूरी
शिव संहिता	–	

19.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. नाडी से आप क्या समझते हैं? इसको विस्तार से समझाएँ।
2. नाड़ियों की योगाभ्यास में क्या भूमिका है? स्पष्ट करें।
3. नाड़ियों के प्रकारों का वर्णन करते हुए उनके कार्यों का वर्णन व प्रमुख तीन नाड़ियों को विस्तार से समझाएँ।
4. तंत्रिका तंत्र और नाड़ियों में सम्बन्ध स्पष्ट करें।
5. प्राण एवं नाड़ियों के सम्बन्ध पर प्रकाश डालें।
6. नाड़ियों के असन्तुलन से शरीर और मन पर पड़ने वाले प्रभावों को समझाएँ।
7. नाड़ियों के अस्तित्व के प्रमाणों की चर्चा करें।

इकाई – 20 चक्र

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 चक्र

20.3.1 नामकरण

20.3.2 स्वरूप एवं स्थिति

20.4 चक्रों की संख्या

20.4.1 मूलाधार चक्र (पेल्विक प्लेक्सस)

20.4.2 स्वाधिष्ठान चक्र (हाइपोगैस्ट्रिक प्लेक्सस)

20.4.3 मणिपुर चक्र (एपिगैस्ट्रिक प्लेक्सस)

20.4.4 अनाहत चक्र (कार्डियाक प्लेक्सस)

20.4.5 विशुद्धि चक्र (कैरोटिड प्लेक्सस)

20.4.6 आज्ञाचक्र (मेड्यूला)

20.4.7 सहस्रार चक्र (ब्रेन)

20.5 चक्र अस्तित्व के प्रमाण

20.6 सारोँश

20.7 शब्दावली

20.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

20.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

20.10 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में पाठकों को चक्र के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त होगी। चक्र योगग्रन्थों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। योगाभ्यास में सूक्ष्म संवेदनाओं को समझने एवं आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने में चक्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, चक्र स्वयं में एक महत्वपूर्ण विषय है, यौगिक शक्तियों को समझने में चक्र सम्बन्धी विषय को समझने के लिये प्रस्तुत इकाई आपको सहायता प्रदान करेगी। इकाई के अध्ययन के पश्चात् विषय सम्बन्धी आपकी जिज्ञासाओं की संतुष्टि सम्भव होगी।

जैसा कि हम जानते ही हैं कि व्यक्ति के शरीर में अनेक ऐसी क्षमताएँ एवं शक्तियाँ हैं जिनको सामान्यतः वह स्वयं अनुभव नहीं कर पाता और वो आजीवन ही उनसे अनभिज्ञ रहता है। योगियों ने अपने तप और साधना से इन शक्तियों को शरीर में खोजा और उनको किस प्रकार प्राप्त किया जाये ये भी बताया। इन सूक्ष्म किन्तु शक्तिशाली शक्तियों में चक्र भी एक महत्वपूर्ण विषय है। योग के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये इसे जानना एवं इसकी शक्ति का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक होता है, अन्यथा लक्ष्य प्राप्ति सम्भव नहीं हो पाती है। आइये इस बारे में विस्तार से जानें –

20.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे

- चक्र किसे कहते हैं।
- चक्र के अर्थ एवं स्वरूप के बारे में।
- चक्र की संख्या के बारे में।
- चक्रों के कार्य के बारे में।
- योग में चक्रों के महत्व के बारे में।

20.3 चक्र

हठयोग में जब यौगिक साधनाओं के अन्तर्गत कुण्डलिनी शक्ति के जागरण का अभ्यास किया जाता है तो कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी के भीतर ब्रह्मनाड़ी से ऊर्ध्वगति करते हुए षट्चक्रों का भेदन करते हुए ही शिव स्थान सहस्रार में पहुँचती है, ये ही योग की उच्चतम अवस्था है। कुण्डलिनी के रास्ते में आने वाले ये षट्चक्र छः अवरोध होते हैं, जिस प्रकार व्यक्ति दरवाजे को खोलकर घर में प्रवेश करता है ठीक उसी प्रकार कुण्डलिनी भी इन छः दरवाजों को एक-एक करके खोलती हुई सहस्रार में स्थित अपने आराध्य शिव से मिलती है।

20.3.1 नामकरण — चक्र अर्थात् घूमना। जब प्राण प्रवाह कुण्डलिनी जागरण के समय ब्रह्मनाड़ी में गति करता है तब छः अवरोध उसके रास्ते में आते हैं जिसके कारण वह इन स्थानों में टकराता है तब वह प्राण प्रवाह वहाँ गोल-गोल घूमने लगता है। इसी कारण इसे चक्र कहते हैं।

20.3.2 स्वरूप एवं स्थिति — योगियों ने अपने तपोबल से चक्रों को देखा एवं उनकी सोई हुई शक्ति को जागृत किया। चक्रों को कमल के फूल के समान स्वरूप वाला बताया जाता है। चक्र जागृत होने से पूर्व अपने-अपने निश्चित स्थानों पर अधोमुख अवस्था में बन्ध रहते हैं, परन्तु जागृत होने पर ऊर्ध्वमुखी होकर खिले हुए कमल के फूल के समान हो जाते हैं। हर चक्र का अपना अलग स्वरूप होता है, हर एक की अपनी-अपनी शक्तियाँ होती हैं। शारीरिक स्तर पर चक्र तन्त्रिका जालक एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से सम्बन्धित होते हैं। योग में चक्र उन विशेष स्थानों को कहते हैं। जहाँ से सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त प्राणों को नियंत्रित किया जाता है। प्रत्येक चक्र एक स्विच की भाँति है जो मस्तिष्क के एक क्षेत्र विशेष को जाग्रत करता है। अधिकतर व्यक्ति में ये चक्र सुषुप्त तथा निष्क्रिय रहते हैं। यौगिक अभ्यास द्वारा चक्रों पर ध्यान एकाग्र करके चक्रों में प्राण प्रवाह प्रेरित किया जाता है जिससे वे सक्रिय बनते हैं। फलतः मस्तिष्क के सुषुप्त क्षेत्रों में जागृति आती है, तथा सूक्ष्म एवं कारण शरीर में उपस्थित शक्तियाँ जाग्रत होती हैं जिससे व्यक्ति को चेतना के उन उच्च स्तरों का अनुभव होता है, जो सामान्यतः उसकी पहुँच से बाहर की बात होती है।

जैसा कि आप जान चुके हैं कि सुषुम्ना के भीतर तीन और नाड़ियाँ उपस्थित होती हैं जो कमलः इस प्रकार से हैं — वज्रानाड़ी, चित्रानाड़ी, ब्रह्मनाड़ी

ये समस्त नाड़ियाँ सूक्ष्म होती हैं जिन्हें नग्न आँखों से स्थूल शरीर में नहीं देखा जा सकता। चक्र इनसे भी सूक्ष्म होते हैं। जब कुण्डलिनी ब्रह्मनाड़ी से ऊर्ध्वगति करते हुए आगे बढ़ती है तो उस मार्ग में उसे चक्र अवरोध के रूप में मिलते हैं तो आप समझ सकते हैं कि चक्र नाड़ियों से भी सूक्ष्म है। योगियों ने अपने तपोबल से इसे देखा और उनकी व्याख्या की। ये सामान्य व्यक्ति के बस से बाहर की चीज है। योग मार्ग में आगे बढ़ने वाले जिज्ञासु ही अपनी तपस्चर्या द्वारा इन्हें देख सकते हैं तथा अनुभव कर सकते हैं।

चक्र एक प्रकार से तन्तु गुच्छक के रूप में जाना जाता है, जो कि अनेकों आकृति वाले होते हैं। वह आकृति ऐसी लगती है जैसे कमल के फूल की पंखुड़ियाँ हों, साथ ही जिस प्रकार लकड़ी में घुन लग जाने से वह जिस प्रकार लकड़ी को काटता चला जाता है तो उसमें निरंतर प्राण के प्रवाह की गति से इन ग्रन्थियों में कुछ अक्षर जैसे आकृति बन जाती है जो कि चक्र के अक्षर के रूप में जाने जाते हैं।

जिस प्रकार नदी में पानी का तेज गति और गहराई भंवर उत्पन्न करती है ठीक उसी प्रकार प्राणवायु का सुषुम्ना प्रवाह इन चक्रों में होकर तेजगति से गुजरता है तो वहाँ एक प्रकार से सूक्ष्म भंवर पड़ जाता है जिससे एक आकृति जैसी दिखाई देने लगती है। इन आकृतियों को चक्र के यंत्र के रूप में हम जानते हैं।

हर चक्र का अपना एक अलग रंग होता है। साधना के दौरान व्यक्ति इनको अनुभव करता है। जैसा कि जानते हैं कि हमारा शरीर पंच तत्वों से निर्मित होता है और हमारे शरीर में हर तत्व का अपना एक स्थान होता है उसी प्रकार हर चक्र का भी शरीर में अपना स्थान होता है। चूँकि हर तत्व का अपना एक रंग होता है तो जब साधक चक्र की जागृति के लिये उस पर ध्यान लगाता है तो उसे चक्र विशेष पर कुछ रंग भी दिखाई देता है। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तत्वों के अनुसार ही साधक को चक्र का रंग दिखाई देता है।

चक्रों में प्राण वायु गति करती है। उसमें यह गति में भी भिन्नता पायी जाती है। इसका कारण शरीर में उपस्थित वात, पित्त एवं कफ हैं। ये नाड़ियों से सम्बन्धित रहता है और इन्हीं के प्रताप से नाड़ियों की गति में भी भिन्नता आ जाती है। नाड़ी विशेषज्ञ इसी चाल को समझकर रोग का उपचार बताते हैं। तत्वों के प्रवाह, गति में अवरोध, रक्त प्रवाह, प्राणवायु प्रवाह आदि से नाड़ियों की एक विशेष गति हो जाती है। कहीं हाथी, कहीं मृग, मेंढक आदि की चाल हमें महसूस होती है तो हम इसे चक्र का वाहन कहते हैं।

हर चक्र का अपना एक देवता और देवी होती है जो उत्पादन, पोषण, ज्ञान, बल आदि कार्य में सहायक होते हैं। इन चक्रों का व्यक्ति के सम्पूर्ण शरीर पर प्रभाव पड़ता है। कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को ये प्रभावित करते हैं। हर चक्र की अपनी एक विशेष इन्द्रिय होती है, जिसे चक्र की इन्द्रिय कहते हैं।

20.4 चक्र की संख्या

सामान्यतः चक्रों की छः संख्या बताई जाती है, परन्तु विभिन्न ग्रन्थों में चक्रों की संख्या को लेकर भिन्न-भिन्न मत दिये हैं जो कि इस प्रकार से हैं। षट्चक्र के विषय में योगकुण्डली उपनिषद् में वर्णन मिलता है कि –

मूलाधार स्वाधिष्ठानं मणिपूरं तृतीयकम्।

अनाहतं विशुद्धं च आज्ञाचक्रं च षष्ठकम्॥

– (योग कुण्डली उपनिषद् अध्याय तीन)

अर्थात् – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा ये छः चक्र हैं। यह मान्यता योग चूडामणि उपनिषद्, हठयोग प्रदीपिका तथा गोरक्ष पद्धति आदि ग्रन्थों में भी स्वीकृत है।

अथर्ववेद के अनुसार आठ चक्रों का वर्णन इस प्रकार से है –

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पुरोडयोध्या।

तस्यां हिरण्यय कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

– (अथर्व 10/2/31)

इस मन्त्र में आठ चक्र और नौ द्वार युक्त अयोध्यया नाम की नगरी इस मानव शरीर को बताया गया है। इस शरीर में आठ चक्र और नौ द्वार हैं जो ज्योति से आदृत हैं।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा चक्र के अलावा ज्ञानचक्र एवं षट्दल चक्र को भी इसमें बताया गया है।

तन्त्र में नौ चक्रों का वर्णन मिलता है। इसमें आठ चक्र तो उपरोक्त वर्णित ही हैं, नौवा चक्र सहस्रार को बताया गया है।

सामान्यतः षट्चक्रों का ही ज्यादा वर्णन मिलता है। सहस्रार को जोड़कर बात करें तो सात चक्र ही मुख्य हैं। बाँकि चक्र उपचक्रों के रूप में जाने जाते हैं। जिनकी अनेक संख्या शरीर में बतायी जाती है। हम यहां केवल मूल चक्रों का ही वर्णन करेंगे। चक्र से शरीर के अन्दर स्थित पंचतत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के मूल केन्द्र स्थानों का ही वर्णन किया जाता है। लौकिक दृष्टि से यद्यपि ये सारे वर्णन असम्भव तथा विचित्र पूर्ण प्रतीत होता है परन्तु तात्त्विक दृष्टि से ये सब सत्य है। जैसा कि हम जानते हैं कि सृष्टि में उपस्थित पंचमहाभूत हमारे शरीर में भी उपस्थित है। ये वलयान्वित हैं इसलिये इनको चक्र कहते हैं। ये सब वर्णन काल्पनिक नहीं हैं।

हमारे शरीर के गुदा भाग में मूलाधार चक्र की स्थिति है यह पृथ्वी तत्व का स्थान है। पेड़ वाले भाग में स्वाधिष्ठान चक्र है यह जल तत्व का स्थान है। उसके ऊपर नाभि वाले भाग में मणिपूर चक्र की स्थिति है, यह अग्नि तत्व का स्थान है। इसके ऊपर हृदय में अनाहत चक्र की स्थिति है यह वायु तत्व का स्थान है। गले में विशुद्धि चक्र का स्थान है, यह आकाश तत्व का स्थान है। कण्ठ से ऊपर भूमध्य में आज्ञा चक्र की स्थिति है यह महत् तत्व का स्थान है। इसके ऊपर सहस्रार चक्र है जो शिव का स्थान माना जाता है। यह समस्त चक्र जब योग प्रक्रिया द्वारा जागृत कर लिये जाते हैं। तब कुण्डलिनी शक्ति चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार में ही परम शिव से जाकर मिलती है।

चक्रों की स्थिति अतिसूक्ष्म होती है। ये शक्ति से परिपूर्ण होते हैं, इन्हें जागृत करना पड़ता है। तभी ये अपनी शक्ति के प्रभाव से व्यक्ति को पूरा लाभ पहुँचा पाते हैं। उस समय ये सूक्ष्म चक्र दिव्य शक्ति से मुक्त विशालकाय हो जाते हैं। ठीक वैसे जैसे फिल्म की रील का आकार तो छोटा रहता है लेकिन पर्दे में वह बड़े आकार की फिल्म दिखाता है। प्रत्येक चक्र का अपना एक निश्चित स्वरूप होता है। कमल पुष्प की आकृति वाले इन चक्रों की अपनी एक निश्चित पंखुड़ियों का दल होता है। कमल का फूल प्रतीकात्मक रूप से यह चित्रित करता है, कि आध्यात्मिक जीवन में साधक को तीन अवस्थाओं को पार करना होता है — अविद्या, जिज्ञासा, एवं प्रबोधन। यह चेतना की निम्नतम अवस्था से उच्चतम अवस्था तक आध्यात्मिक विकास का चित्रण करता है।

कमल दल, जिन पर बीज मन्त्र अंकित रहते हैं। ये मन्त्र चक्र एवं उनसे जुड़ी नाड़ियों से सम्बद्ध अतीन्द्रिय ऊर्जा की विभिन्न अभिव्यक्तियों को दर्शाते हैं। आये प्रत्येक चक्र के वाहन, यन्त्र, तत्व, बीजयन्त्र, आदि के बारे में विस्तार से जानें —

20.4.1 मूलाधार चक्र (पेल्विक प्लेक्सस) — चक्रों का मूल आधार होने के कारण इसे मूलाधार चक्र कहते हैं। पुरुषों में इसका स्थान लिंग में तथा स्त्रियों में इसका स्थान गर्भाशय के ग्रीवा में होता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है मूल + आधार। अर्थात् मूल केन्द्र।

मूलाधार चक्र चतुर्दल पद्मरूप है तथा इसका वर्ण लाल है। इसका भू लोक है। कमल के अक्षर वं, शं, षं, सं, है। इसका तत्व पृथ्वी है। गुण गन्ध है। तत्व बीज लं है। बीज का

वाहन ऐरावत हाथी है। इसका देवता ब्रह्मा जी है, शक्ति डाकिनी है। इसका यन्त्र चतुष्कोण है, ज्ञानेन्द्रिय नासिका है तथा कर्मेन्द्रि गुदा है। पद्म के चार अक्षर की चार वृत्तियाँ हैं – काम, क्रोध, लोभ, मोह।

मूलाधार चक्र कुण्डलिनी का निवास स्थान है। सर्प के रूप में स्वयंभू लिंग के चारों ओर लिपटी हुई कुण्डलिनी गहन निद्रा में लीन है। यह मनुष्य एवं ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियों की स्रोत है, चाहे वह काम शक्ति हो चाहे भावनात्मक, मानसिक अतीन्द्रिय या आध्यात्मिक शक्ति हो। यद्यपि शक्ति एक ही है, तथापि जिस चक्र के माध्यम से यह व्यक्ति होती है, उसके अनुसार विभिन्न गुणों एवं लक्षणों को धारण करती हैं।

मूलाधार चक्र का ध्यान पृथ्वी तत्व के लं बीज जप के साथ करना होता है। ध्यान करते समय इस प्रकार की भावना करते हैं कि पृथ्वी सत्व का रंग लाल व पीला मिश्रित सुवर्ण के समान अति दीप्तिमान है। इस प्रकार से सम्पूर्ण चक्र का ध्यान करते हैं। चक्र में ध्यान करने से व्यक्ति को ध्यान का फल प्राप्त होता है जो इस प्रकार से है – आरोग्यता, आनन्द, वाक्यसिद्धि, काव्यसिद्धि, सृजनात्मक, एवं रचना आदि में दक्षता की प्राप्ति आदि।

20.4.2 स्वाधिष्ठान चक्र (हाइपोगैस्ट्रिक प्लेक्सस) – मूलाधार चक्र से दो अंगुल ऊपर पेड़ के पास स्वाधिष्ठान चक्र का स्थान है, स्वाधिष्ठान शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, स्व + अधिष्ठान। 'स्व' का अर्थ होता है 'अपना' और 'अधिष्ठान' का अर्थ होता है निवास स्थान। इस प्रकार स्वाधिष्ठान का अर्थ हुआ अपना निवास स्थान।

इसका षट्दल पद्मरूप है। इसका वर्ण सिन्दूरी रंग है। इसका भुव लोक है। तत्व बीज वं है। तथा बीज का वाहन मकर है, इसका देवता विष्णु है तथा उसकी शक्ति राकिनी है। इसका यन्त्र अर्द्ध चन्द्र है। चक्र की ज्ञानेन्द्रिय रसना है तथा कर्मेन्द्रिय लिंग है। पद्मदलों के छः अक्षरों की छः वृत्तियाँ हैं – प्रश्रय, विश्वास, अवज्ञा, मूर्च्छा, सर्वनाश और कूडता।

स्वाधिष्ठान चक्र का ध्यान करते समय वं बीज मन्त्र का पेड़ वाले भाग में एकाग्रता बनानी चाहिये तथा सिन्दूरी रंग के साथ ये प्रक्रिया करनी चाहिये। चक्र पर ध्यान करने से व्यक्ति में प्रबुद्ध बुद्धि का उदय होता है, नव निर्माण की शक्ति, स्वेच्छा मृत्यु और जिह्वा में सरस्वती का वास आदि दिव्य फल प्राप्त होता है।

स्वाधिष्ठान चक्र इन्द्रिय सुखोपभोग की अभिलाशा का प्रतीक है, अर्थात् चेतना के इस स्तर पर मनुष्य मुख्य रूप से सुखद संवेदनाओं की प्राप्ति हेतु प्रयासरत रहता है। मूलाधार में जहाँ भौतिक सुरक्षा का प्रयास होता है, वहीं स्वाधिष्ठान में इन्द्रियों के माध्यम से आहार, मदय, मैथुन इत्यादि के रूप में व्यक्ति सुख प्राप्ति के लिए नित्य प्रेरित होता रहता है। जब स्वाधिष्ठान चक्र जाग्रत होता है तो इन वस्तुओं के प्रति अत्यधिक लालसा उत्पन्न हो सकती है। शारीरिक स्तर पर यह चक्र उत्सर्जन एवं प्रजनन अंगों से सम्बद्ध है। इस चक्र का मानस दर्शन इन अंगों की कार्यप्रणाली के दोष निवारण में सहायक हो सकता है। स्वाधिष्ठान की मुख्य वायु व्यान है और यह पूरे शरीर में व्याप्त है। यह और मणिपूर चक्र प्राणमयकोश के निवास स्थान है।

स्वाधिष्ठान चक्र में व्यष्टि एवं समष्टि चेतना का वास होता है। यह सभी संस्कारों एवं भूतकाल की स्मृतियों का भण्डारगृह है। यह मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों का केन्द्र है। इस चक्र की शुद्धि से व्यक्ति पाशविक वृत्तियों से ऊपर उठ जाता है।

इस चक्र को जाग्रत करने के लिये अन्धेरे आकाश के नीचे एक विशाल गहरे सागर और उसमें उठती हुई लहरों का मानसिक अवलोकन करते हैं। सागर की लहरों का उतार चढ़ाव सजगता के क्रमशः क्षीण तथा प्रवाहित होने का परिचायक है।

20.4.3 मणिपुर चक्र (एपिगैस्ट्रिक प्लेक्सस) – यह चक्र नाभि के ठीक पीछे मेरूदण्ड में स्थित है। मणिपुर का शाब्दिक अर्थ होता है मणियों का नगर। अग्नि का केन्द्र होने के कारण यह क्षेत्र मणियों की तरह चमकता रहता है। ये क्षेत्र प्राण एवं ऊर्जा से दीप्त हैं। यही कारण है कि इस क्षेत्र को मणियों का नगर कहते हैं।

मणिपुर चक्र दशदल पद्म है तथा इसका वर्ण नीला है। इसका स्व लोक है। पद्मदलों के 10 अक्षर डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं हैं। इसका तत्त्व अग्नि है तथा गुण रूप है। तत्त्व बीज रं है। बीज का वाहन मेष है। इसका देवता वृद्ध रुद्र है तथा शक्ति लाकिनी है। इसका यन्त्र त्रिकोण है। ज्ञानेन्द्रिय चक्षु है, तथा कर्मेन्द्रि चरण है। पद्मदलों के 10 अक्षरों की 10 वृत्तियां हैं – लज्जा, पिशुनता, ईर्ष्या, सुषुप्ति, विषाद, कषाय, तृष्णा, मोह, घृणा और भय।

यहाँ पर खाये गये पदार्थों के रस को रक्त के रूप में परिणत कर सम्पूर्ण शरीर में समान रूप से पहुँचाने वाला वायु समान वायु (प्राण) कार्य करता है।

मणिपुर चक्र आत्मनिश्चय, कियाशीलता एवं प्रभुत्व का केन्द्र है। इसका सम्बन्ध महत्वाकांक्षा, इच्छाशक्ति तथा शासन करने की क्षमता से है। किन्तु नकारात्मक रूप में इसकी अभिव्यक्ति निरंकशता के रूप में हो सकती है। व्यक्ति सभी चीजों और व्यक्तियों को अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र समझने लगता है।

सौर्य जालक भोजन के पाचन एवं चयापचय से सम्बद्ध है। यह आमाशय की ग्रन्थियों, अग्नाशय, पित्ताशय तथा आमाशय के अन्य अंगों के कार्यों का संचालन करता है, जो पाचन एवं पोषक तत्वों के अधिग्रहण के लिये आवश्यक एन्जाइमों, अम्लों एवं रसों को उत्पन्न करते एवं उनका स्राव करते हैं। मणिपुर चक्र इन क्रियाओं को नियन्त्रित करने वाला अतीन्द्रिय केन्द्र है।

किडनी के ऊपर उपस्थित एड्रीनल ग्लेण्ड भी मणिपुर चक्र से ही सम्बन्धित होता है ये आवश्यकतानुसार हार्मोन्स का स्राव करती हैं जिससे सभी शारीरिक क्रियाओं में तीव्रता आ जाती है, मन सतर्क हो जाता है, हृदय गति बढ़ जाती है श्वास प्रक्रिया अधिक तेज हो जाती है, शरीर सामान्य से अधिक क्रियाशील हो जाता है जिसे सामान्य रूप से संघर्ष या पलायन की प्रतिक्रिया कहते हैं जो व्यक्ति सुस्त या निराश रहते हैं या जिनका पाचन संस्थान ठीक से कार्य नहीं करता, उन्हें मणिपुर चक्र पर एकाग्रता का अभ्यास करते हुये उस भाग को ऊर्जावान बनाना चाहिये।

मणिपुर चक्र की जागृति के लिये दहकते हुए सूर्य या अग्नि गोलक का मानस दर्शन करना चाहिये, साथ ही इस क्षेत्र से विकसित होकर पूरे शरीर में व्याप्त हो रहे प्रकाश के रूप में ऊर्जा का अनुभव करते हैं। इसके बीज मंत्र रं का भी चिन्तन साथ में किया जा सकता है, इसके जागृत होने पर व्यक्ति को सम्पूर्ण कायव्यूह का ज्ञान हो जाता है और संहार तथा पालन की शक्ति प्राप्त हो जाती है, योगी का शरीर तेजस्वी और कान्तियुक्त बन जाता है।

20.4.4 अनाहत चक्र (कार्डियाक प्लेक्सस) – अनाहत चक्र का स्थान हृदय क्षेत्र होता है। वक्ष के केन्द्र के पीछे मेरूदण्ड में इसकी स्थिति है। अनाहत का शाब्दिक अर्थ होता है – जो आहत न हुआ हो। हृदय से सम्बन्ध होने के कारण इसका नाम अनाहत पड़ा है क्योंकि हमारा हृदय आजीवन लयबद्ध तरीके से लगातार स्पन्दित होता रहता है। सृष्टि में दो वस्तुओं के टकराने से उत्पन्न हुई ध्वनि को आहत ध्वनि कहते हैं। जो कि सभी जगह सामान्यतः देखने को मिलती है, परन्तु अनाहत ध्वनि बिना किसी के टकराने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि है, यह आद्य ध्वनि है यह सभी ध्वनियों का स्रोत है। यह ध्वनि हृदय में

सुनायी देती है। योगी उसे आन्तरिक, अजन्में, अनन्त, स्पन्दन के रूप में, ब्रह्माण्ड के स्पन्दन के रूप में अनुभव करते हैं।

अनाहत चक्र 12 पंखुड़ियों वाले कमल के फूल के रूप में होता है। इसका वर्ण अरुण शक्तिम है। इसका मह लोक है। पद्मदलों के अक्षर कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं हैं, 12 अक्षरों की 12 वृत्तियाँ हैं — आशा, चिन्ता, चेष्टा, मतता, दम्भ, विकलता, विवेक, अहंकार, लोलूपता, कपटता, वितर्क, अनुताप। इसका तत्त्व वायु है तथा गुण स्पर्श है। तत्त्व बीज यं है। तथा उसका वाहन मृग है। इसका देव ईशानरुद्र है तथा उसकी शक्ति लाकिनी है। इसका यन्त्र षट्कोण है, ज्ञानेन्द्रिय — त्वचा तथा कर्मेन्द्रिय हाथ है।

शारीरिक स्तर पर अनाहत चक्र हृदय, फेफड़ों, रक्त परिसंचरण एवं श्वसन संस्थान से सम्बद्ध रहता है। रक्ताल्पता, रक्तचाप, हृदयगति बढ़ना, क्षयरोग, दमा तथा क्रोकाइटिस आदि रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को आसन तथा अन्य योगाभ्यास करते समय अनाहत पर ध्यान करना चाहिये।

अनाहत चक्र को जाग्रत करने के लिये एक अरुणरक्तिम या षट्कोण का यं बीजमंत्र के साथ ध्यान करते हैं। वायु रहित स्थान में ज्योति जिस प्रकार स्थिर रहती है, उसी प्रकार की ज्योति की कल्पना हृदय क्षेत्र में की जाती है। ज्योति जीवात्मा का प्रतीक है, जो संसार की हवाओं से अप्रभावित रहता है। चक्र की जागृति से व्यक्ति में कवित्व शक्ति जाग्रत होती है। ध्यान लम्बा होने पर 10 प्रकार के नाद सुनाई देते हैं। व्यक्ति को ईशित्व सिद्धि प्राप्त होती है।

20.4.5 विशुद्धि चक्र (कैरोटिड प्लेक्सस) — विशुद्धि चक्र गर्दन के पिछले भाग में, कण्ठ कूप के पीछे स्थित है। यह शुद्धि का केन्द्र है। यह 16 पंखुड़ियों वाला कमल दल है तथा धूम्रवर्ण है। इसका जन लोक है। पद्मदलों के अक्षर अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, लूं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अं: है। इस विशुद्धि चक्र में 16 दलों पर आकाश तत्त्व की सोलह वृत्तियाँ हैं: निशाद, ऋषभ, गान्धार, शङ्ख, मध्यम, धौवत, पंचम — ये सात तो स्वर के रूप में हैं और अं, हूं, फट, वषट्, स्वधा, स्वाहा, नमः, विष और अमृत ये नौ बिना स्वर के हैं, कुल मिलाकर 16 वित्तियाँ हैं। चक्र का तत्त्व आकाश और गुण शब्द है, तत्त्व बीज हं है। उसका वाहन हाथी है। देवता पंचमुख वाले शिव तथा शक्ति शाकिनी हैं। यन्त्र शून्य गोलाकार है। चक्र की ज्ञानेन्द्रिय कर्ण तथा कर्मेन्द्रिय वाक् है।

विशुद्धि चक्र में सही समझ एवं विवेक की जागृति होती है। यहाँ जीवन के प्रवाह के साथ बहते हुए, सब चीजों को जैसे का तैसा स्वीकार करते हुए, अच्छे-बुरे का भेद किये बिना जीवन के द्वैत भाव को स्वीकार किया जाता है। यह चक्र स्वर रज्जु-स्वर यन्त्र प्रदेश तथा थायराइड एवं पैराथायराइड ग्रन्थियों को परिचालित करता है। शरीर के इस भाग में उत्पन्न रोगों को इस चक्र पर एकाग्रता करने से ठीक किया जा सकता है। गले के मध्य में ही अमृत के स्वाद का अनुभव होता है। अमृत बिन्दु चक्र से झरने वाला एक मीठा रस है। विशुद्धि चक्र में इसकी शुद्धि होती है तथा सम्पूर्ण शरीर में उपयोग हेतु भेजने के लिये इसे तैयार किया जाता है।

विशुद्धि चक्र की जागृति के लिये हं बीज मंत्र के साथ आकाश तत्त्व का ध्यान कण्ठप्रदेश में किया जाता है। साथ ही भाव किया जाता है। उस क्षेत्र में अमृत बूंद टपक रही है। जिसका स्वाद मीठा है। और उससे आनन्द की प्राप्ति हो रही है। विशुद्धि चक्र में ध्यान करने से भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है। व्यक्ति शान्तचित्त तथा ज्ञानवान होता है, साथ ही तेजस्वी एवं दीर्घ आयु होता है।

20.4.6 आज्ञाचक्र (मेड्यूला) — आज्ञा चक्र मध्य मस्तिष्क में भ्रूमध्य के पीछे मेरुदण्ड के शीर्ष पर स्थित है। इस चक्र को तीसरे नेत्र, ज्ञानचक्षु, त्रिवेणी, गुरु चक्र, तथा शिव के नेत्र के नाम से भी जाना जाता है। गहन ध्यान की अवस्था में शिष्य इस चक्र द्वारा गुरु या ईश्वर से आज्ञा तथा मार्गदर्शन प्राप्त करता है।

आज्ञाचक्र द्विदल पद्म है। इसका वर्ण सफेद है। इसका तप लोक है। पद्म दलों के अक्षर हं, क्षं है। इन दो अक्षरों की दो वृत्तियां हैं प्रवृत्ति एवं अहंमन्यता। इसका तत्व महत् है। इसका तत्व बीज ओम् है। उसका वादन नाद है, इसका देव लिंग है तथा उसकी शक्ति हाकिनी है। इसका यन्त्र लिंगाकार है।

इस चक्र का तत्व महत् है इसी केन्द्र में प्रज्ञा तथा अन्तर्ज्ञान की जागृति होती है। जब आज्ञा चक्र जागृत होता है, तब मन स्थिर एवं शक्तिशाली हो जाता है तथा प्राणों के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त होता है।

आज्ञाचक्र पीनियल ग्रन्थि से सम्बन्धित होता है, जो परिपक्व मनुष्यों में लगभग क्षीण हो चुकी होती है। आत्मिक स्तर पर यह बिन्दु मानसिक एवं आत्मिक आयामों के बीच एक सेतु है। आज्ञा चक्र परा मानसिक शक्तियों जैसे — अतीन्द्रिय दृष्टि, अतीन्द्रिय श्रवण तथा दूर संवेदन के जागरण के लिये उत्तरदायी होता है। विचार ऊर्जा का बहुत ही सूक्ष्म रूप होता है, आज्ञाचक्र के जाग्रत होने पर विचारों का सम्प्रेषण एवं अभिग्रहण सम्भव होता है। यह एक तरह से चेतना के गहरे एवं उच्च स्तरों के दरवाजे खोलने जैसा होता है। इस चक्र के जागरण से बुद्धि, स्मृति एवं एकाग्रता का विकास होता है।

आज्ञाचक्र को जाग्रत करने के लिये भ्रूमध्य में ज्योति का ध्यान करना चाहिये। ऊँ कार का ध्यान भी किया जा सकता है। इस चक्र पर ध्यान करने से दिव्य नेत्र प्राप्त होता है व्यक्ति को योगदृष्टि प्राप्त होती है। ऐसे व्यक्ति के लिये ब्रह्माण्ड में तत्व अज्ञात नहीं रहता अर्थात् वह समस्त तत्वों का ज्ञाता हो जाता है। समस्त चक्रों के ध्यान का फल केवल आज्ञा चक्र के जाग्रत होने पर प्राप्त हो जाता है।

20.4.7 सहस्रार चक्र (ब्रेन) — सहस्रार चक्र का स्थान सबसे ऊपर सिर के शीर्ष भाग में बताया गया है। यह वास्तव में चक्र नहीं चेतना का उच्च निवास स्थान है, हजार दल वाला होने के कारण इस चक्र को सहस्रारचक्र कहते हैं। इसमें 50 अक्षरों की 20 बार आवृत्ति है जो कुल मिलाकर 1000 (50x20=1000) की संख्या बनाते हैं। इस चक्र का सत्य लोक है। यह तत्वातीत है तथा तत्व बीज विसर्ग है। बीज का वाहन बिन्दु है। इस चक्र का देव परमब्रह्म है तथा इसकी शक्ति महाशक्ति है। इसका यन्त्र पूर्णचन्द्र निराकार है। इसका प्रभाव सर्वज्ञता, अमरता तथा मुक्ति है। जब कुण्डलिनी जाग्रत होती है तो विभिन्न चक्रों का भेदन करते हुये अपने स्रोत में मिल जाती है। पदार्थ एवं ऊर्जा के शुद्ध चेतना में समाहित होने की अवस्था आनन्दपूर्ण उन्माद की अवस्था है। इस अवस्था को प्राप्त करने पर योग जन्म मरण के चक्रव्यूह से मुक्त हो जाता है। साथ ही इस अवस्था में विभिन्न चक्रों की विभिन्न शक्तियाँ भी बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा मन के साथ वहाँ पूर्ण रूप से परमात्मा में लीन हो जाती हैं। तब उस साधक के लिये जगत की सत्ता भी समाप्त हो जाती है। साधक असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेता है।

अतः हम कह सकते हैं कि चक्र प्रणाली का प्रत्येक स्तर विभिन्न शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, अतीन्द्रिय एवं आध्यात्मिक तत्वों का सम्मिश्रण है। प्रत्येक चक्र का सम्बन्ध किसी न किसी स्नायविक जालक एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थि से होता है, जो कि विभिन्न अंगों एवं प्रणालियों से संबद्ध होते हैं। ये सभी चक्र मस्तिष्क की नियंत्रक प्रक्रियाओं से जुड़े होते हैं

जिनमें प्रत्येक में भावनात्मक, मानसिक, एवं अतीन्द्रिय तत्व होते हैं। समस्त चक्र हमारे अस्तित्व के भिन्न स्तरों के बीच समन्वय हेतु माध्यम का कार्य करते हैं। इनके माध्यम से ऊर्जा के स्तर को घटाने या बढ़ाने का अथवा उन्हें दिशा देने का काम भी होता है, चक्र पावरहाऊस है ये नाड़ियों के माध्यम से ऊर्जा को पूरे शरीर में प्रवाहित करते हैं।

चक्रों को समझने के लिये मेरुदण्ड के भिन्न-भिन्न स्तरों को शरीर के भिन्न-भिन्न भागों का नियन्त्रण माना जा सकता है। ध्यानावस्था में योगियों ने चक्र एवं नाड़ियों को देखा जिन्हें शरीर के भीतर शारीरिक एवं अतीन्द्रिय परिपथों एवं केन्द्रों के रूप में जाना। आज इन्हें वैज्ञानिक स्तर पर स्वीकार कर लिया गया है। परन्तु आश्चर्य होता है ये सोचकर कि योगियों की तपस्या का बल कितना रहा होगा जिन्होंने बिना किसी यन्त्र की सहायता से इतने गूढ़ रहस्यों को उजागर किया। योगियों ने यह सिद्ध किया कि मेरुदण्ड में स्थित चक्रों पर एकाग्रता से तथा मानसिक एवं अतीन्द्रिय शक्ति, श्वास एवं शारीरिक स्थितियों के माध्यम से कुछ शारीरिक एवं अतीन्द्रिय अनुभव संभव है। इन अभ्यासों के द्वारा शरीर, भावनाओं, मन, अतीन्द्रिय एवं आत्मा की मूलभूत एवं नैसर्गिक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण कर पाना सीखा जा सकता है।

20.5 चक्र अस्तित्व के प्रमाण

डॉ० हिरोशी मोटोयामा ने अपने चक्र सम्बन्धी शोध में ये पाया कि जिन व्यक्तियों के कोई न कोई चक्र जाग्रत था उनमें जाग्रत चक्र-विशेष से सम्बद्ध शारीरिक प्रणालियों के क्रियाकलापों में भी उल्लेखनीय अंतर होता है। जो चक्रों के अस्तित्व को प्रमाणितता प्रदान करते हैं। डॉ० मोटोयामा ने अपने शोध के दौरान बहुत से स्वनिर्मित उपकरण तैयार करे, जिनमें से एक चक्र यंत्र है। इस यन्त्र से चक्रों के उत्तेजित एवं सक्रिय होने के समय शरीर के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र के भीतर होने वाले परिवर्तनों का पता लगाया जा सकता है। इस यंत्र के अत्यधिक सूक्ष्म प्रवर्धक होने की वजह से शक्ति से सूक्ष्म से सूक्ष्म उत्सर्जन को भी नापा तथा रिकार्ड किया जा सकता था। डॉ० मोटोयामा ने शारीरिक बीमारियों का पता लगाने के लिये अपने उपकरण का बड़े स्तर पर उपयोग किया है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

• बहुविकल्पिय प्रश्न –

- (1) चक्रों का सम्बन्ध मुख्य रूप से किस संस्थान से है?

(अ) कंकाल तन्त्र	(ब) श्वसन संस्थान
(स) पाचन तन्त्र	(द) तन्त्रिका तन्त्र
- (2) मूलाधार चक्र का सम्बन्ध है?

(अ) सीवनी प्रदेश से	(ब) हृदय प्रदेश से
(स) उदर प्रदेश से	(द) उपरोक्त सभी
- (3) कुण्डलिनी शक्ति का निवास स्थान माना जाता है।

(अ) मणिपूर	(ब) मूलाधार
(स) अनाहत	(द) स्वाधिष्ठान
- (4) विशुद्धि चक्र किस ग्रन्थि को प्रभावित करता है।

(अ) पीट्यूटरी	(ब) थायराइड
(स) थाइमस	(द) पीनियल
- (5) मूलाधार चक्र की शक्ति है?

(अ) डाकिनी

(ब) लाकिनी

(स) राकिनी

(द) उपरोक्त सभी

• रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –

- (1) चक्र का स्थान भूमध्य में है। यह ग्रन्थि से सम्बन्धित होती है।
- (2) नाभि वाले भाग में मणिपूर चक्र की स्थिति है, यह तत्व का स्थान है।
- (3) गले में विशुद्धि चक्र का स्थान है, यह तत्व का स्थान है।
- (4) किडनी के ऊपर स्थित एंड्रीनल ग्लेण्ड भी चक्र से सम्बन्धित है।

• सत्य और असत्य को चिन्हित करें –

- (1) चक्रों का सम्बन्ध कुण्डलिनी जागरण से है। (.....)
- (2) अथर्ववेद में आठ चक्रों का वर्णन मिलता है। (.....)
- (3) तन्त्र में नौ चक्रों का वर्णन किया गया है। (.....)
- (4) कुण्डलिनी शक्ति चक्रों का भेदन करती हुए सहस्रत्रार में परम शिव से जाकर मिलती है। (.....)

20.6 सारोश

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि चक्र क्या होते हैं? चक्र कितने प्रकार के होते हैं? तथा इनकी शक्ति क्या होती है? साथ ही चक्रों के अस्तित्व के प्रमाणों को भी जाना। चक्रों का प्रभाव किस प्रकार हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता है तथा यह ऊर्जा के केन्द्र किस प्रकार से ऊर्जा को अपने भीतर दबाये हुये होते हैं तथा जाग्रत होने पर अपनी दिव्यता का प्रमाण देते हैं। प्रस्तुत इकाई के द्वारा आपकी चक्र सम्बन्धी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान हुआ होगा। आपने जाना कि चक्र अपने-अपने कार्यक्षेत्र में किस-प्रकार व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक पक्ष को प्रभावित करते हैं। चक्र जो कि ऊर्जा केन्द्र है यहाँ पर भौतिक तथा अतीन्द्रिय शक्तियाँ परस्पर कार्यरत रहती हैं। ये ही मानव के अस्तित्व का नियंत्रण करती है।

षट्चक्र एक प्रकार की सूक्ष्म ग्रंथियाँ हैं। इन चक्र ग्रंथियों में जब साधक अपने ध्यान को एकाग्र करता है तो उसे वहाँ की सूक्ष्म स्थिति का बड़ा विचित्र अनुभव होता है। इन चक्रों में विविध शक्तियाँ समाहित होती हैं। उत्पादन, पोषण, संहार, ज्ञान, समृद्धि, बल आदि। साधक जप के द्वारा ध्वनि तरंगों को चक्रों तक भेजता है पर ध्यान एकाग्र करता है, प्राणायाम द्वारा चक्रों को उत्तेजित करता है, आसनों द्वारा शरीर को इसके लिए उपयुक्त बनाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विभिन्न शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक प्रयासों के द्वारा साधक, शक्ति के केन्द्र इन ग्रंथि चक्रों को जाग्रत एवं उन्नत करता है। यह सारी किया पूर्णतः वैज्ञानिक प्रणाली है।

अतः कहा जा सकता है कि चक्र शारीरिक एवं मानसिक दोनों तरह की ऊर्जा का उत्पादन करता है। तथा इन्हें नापा भी जा सकता है। ये विशिष्ट सुप्त क्षेत्र है। इन्हें पूर्ण रूप से जानना एवं इन पर अनुसंधान का कार्य अभी निरंतर करते रहने से हम इन्हें और सही रूप में जान पाने में सफल होंगे।

20.7 शब्दावली

- व्याप्त – फैले
- सुषुप्त – सोता

- दीप्तिमान – प्रकाशवान
- ज्ञानेन्द्रिय – जिनके माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति होती है।
- कर्मेन्द्रिय – जिनके द्वारा हम कर्म करते हैं।
- अतीन्द्रिय – इन्द्रियों की सीमा से परे
- सृजन – उत्पत्ति करना
- आरोग्य – स्वास्थ्य
- दक्षता – निपूर्णता
- व्यष्टि – व्यक्ति सम्बन्धि
- स्मष्टि – सृष्टि सम्बन्धि

20.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- बहुविकल्प प्रश्नों के उत्तर –

(1). द (2). अ (3). ब (4). ब (5). अ

- रिक्त स्थानों के उत्तर –

(1) आज्ञा, पीनियल (2) जल (3) आकाश (4) मणिपूर

- सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –

(1) सत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य

20.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती

कुण्डलिनी योग – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

घेरण्ड संहिता – निरन्जानन्द सरस्वती

Kundalini for Beginners - Ravindra Kumar

Yoga & Ayurveda - David Frawley

20.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. चक्र क्या है? उसके अर्थ को समझाते हुए इसके प्रकारों का वर्णन करें।
2. षट् चक्रों को विस्तार से समझाते हुए, योग में इनके महत्व को स्पष्ट कीजिए?
3. चक्र का स्वरूप स्पष्ट करते हुए इसकी स्थिति को समझाएँ।
4. चक्रों के अस्तित्व की प्रामाणिकता को समझाएँ।

इकाई – 21 कुण्डलिनी का स्वरूप एवं जागरण के उपाय

21.1 प्रस्तावना

21.2 उद्देश्य

21.3 कुण्डलिनी शक्ति का नामकरण

21.3.1 कुण्डलिनी का स्वरूप एवं स्थान

21.3.2 कुण्डलिनी शक्ति के विभिन्न नाम

21.3.3 कुण्डलिनी शक्ति के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के मत

21.4 कुण्डलिनी जागरण

21.4.1 कुण्डलिनी जागरण की क्रिया विधि

21.5 कुण्डलिनी ऊर्जा एवं आत्मज्ञान

21.6 कुण्डलिनी एवं योग

21.7 कुण्डलिनी शक्ति जागरण में मानव शरीर की महत्ता

21.8 कुण्डलिनी जागरण के लाभ

21.9 सारांश

21.10 शब्दावली

21.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

21.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

21.13 निबन्धात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

कुण्डलिनी हठयोग विद्या का बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। इसको समझना एवं इसकी जागृति हठयोगी का परम लक्ष्य होता है। प्रस्तुत इकाई में आप इस विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे। हठयोग में वर्णित कुण्डलिनी शक्ति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बिन्दुओं को प्रस्तुत इकाई में विस्तार से समझाया गया है जो विषय को समझने में आपके लिए सहायक सिद्ध होंगे। प्रस्तुत इकाई में विषय सम्बन्धित जानकारी को सरल रूप में देने का प्रयास किया गया है। तो आइये जानें कुण्डलिनी शक्ति क्या है ? इसकी क्या दिव्यता है ? मनुष्य का जीवन वास्तव में दो प्रकार से संचालित होता है। एक भौतिक जो वह शरीर से जीता है दूसरा अध्यात्मिक जो वह अंतरात्मा से जीता है। इस दोहरे जीवन की परिपाटी का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि यह पूरा संसार हमारे भीतर भी ठीक उसी तरह संचालित हो रहा है जैसा कि हमें बाहर दिखाई देता है। श्वास-प्रश्वास के रूप में मंथन ठीक उस तरह संचालित हो रहा है जैसे देव और दानव के द्वारा समुद्र मंथन हो रहा हो और अमृत कलश के रूप में प्राण के जागरण की क्रिया निष्पादित हो रही है।

मनुष्य का जीवन यदि दो भागों में विभाजित किया जाये तो एक अन्नमयकोश और दूसरा प्राणमयकोश है जब हम अन्नमयकोश अर्थात् भौतिकवाद की बात करते हैं तो हमारा जन्म कुटुंब, परिवार, रहन, सहन, उठना, बैठना, संतान उत्पन्न करना, पीढ़ी दर पीढ़ी निर्वाह करना, धन कमाना, पद प्राप्ति की लालसा रखना, जीवन मरण के चक्र में फंस कर बार-बार जन्म लेकर पुनः अपने कर्मों को भुगतते जाना और अंत में मृत्यु को प्राप्त हो जाना बस यहाँ तक ही सिमित रह जाता है। वहीं हम अपने प्राणमय कोश की बात करें तो

यह ब्रह्ममांड के रहस्यों और आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से हमारे होने की वजह को दर्शाता है। जहाँ मानव जीवन-मरण, पाप-पुण्य से मुक्त होकर स्वयं का आत्मदर्शन करता है और उस महान दिव्य स्थली स्वर्ग अर्थात् "शांतिधाम का अधिकारी" बन जाता है।

कई बार साधकों के मन में यह कौतुहल का विषय होता है, की आत्मसाक्षात्कार होता क्या विषय है? ये मनुष्य कैसे ज्ञात कर सकता है? पर यदि हम स्वयं पर गौर करें तो हर अच्छी और बुरी घटना और उनसे जुड़ी अनुभूतियाँ ही वह पहली सीढ़ी हैं, जहाँ हम कुछ देर के लिए दुनियादारी से हट कर हम स्वयं के बारे में सोचते हैं। जिस प्रकार बिना ठेस लगे सोना गहने में नहीं गढ़ा जाता ठीक उसी तरह बिना पीड़ा के मनुष्य खुद को नहीं समझ सकता, खुद को जानने के लिए प्रेरित नहीं हो सकता।

प्राचीन समय से ही यह देखा गया है कि सभी व्यक्ति समान नहीं होते। कोई व्यक्ति अपने कार्य क्षेत्र में बहुत निपुण है तो कोई अपना दैनिक कार्य भी ठीक से नहीं कर पाता है। कुछ लोग बड़े-2 आविष्कार करते हैं तो कुछ लोग बिल्कुल निम्न स्तर का जीवन जीते हैं। यह सत्य अक्सर बुद्धिजीवों के मस्तिष्क में एक प्रश्न उत्पन्न करता है कि वह क्या है जो ऐसी सभी विभिन्नताओं का कारण है।

समय के साथ-2 मनुष्य यह जान पाया है कि हर व्यक्ति विशेष में एक विशिष्ट प्रकार की ऊर्जा निवास करती है। कुछ मनुष्यों में यह निष्क्रिय होती है, तो कुछ में शैशवावस्था में होती है और कुछ लोगों में पूर्णतः जागृत अवस्था में होती है। यद्यपि इस ऊर्जा में असीमित क्षमताएं हैं, परन्तु इसका कोई आकार नहीं है। संसार में अलग-2 सभ्यताओं में इसका विवरण भिन्न-2 नाम से मिलता है। तथापि हमारे ग्रंथों में इसका उल्लेख प्राचीनतम है। इसे कुण्डलिनी कहा गया है।

21.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई को पढ़कर आप जान पायेंगे कि

- कुण्डलिनी शक्ति क्या है।
- कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है।
- कुण्डलिनी को विभिन्न ग्रन्थों एवं विभिन्न विद्वानों ने किस प्रकार से वर्णित किया है।
- कुण्डलिनी शक्ति का क्या स्वरूप होता है।
- कुण्डलिनी शक्ति को किस प्रकार जागृत किया जाता है।
- इसके जागरण से व्यक्ति में क्या परिवर्तन आते हैं।
- कुण्डलिनी जागरण के क्या लाभ होते हैं।
- कुण्डलिनी को योग के अन्तर्गत किस प्रकार से वर्णित करते हैं।
- कुण्डलिनी जागरण व्यक्ति में किस प्रकार आत्मज्ञान की प्राप्ति में सहायक होता है।

21.3 कुण्डलिनी शक्ति का नामकरण –

कुण्डलिनी शब्द कुण्ड शब्द से बना है जिस प्रकार कुण्ड में गहराई होती है, ठीक उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति गहराई लिए हुए सोई हुई अवस्था में रहती है। इसीलिए ही इसे

कुण्डलिनी कहा जाता है। कुण्डलिनी शब्द की व्युत्पत्ति को दो और तरह से इस प्रकार समझा जा सकता है –

(1) दायीं तरफ सूर्यनाड़ी (पिंगला) बायें तरफ चन्द्र नाड़ी (इड़ा) इन दोनों नाड़ियों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी (अग्नि) में प्रवाहित शक्ति का कुण्डल अर्थात् सम्पुट होने के कारण इस शक्ति को कुण्डलिनी कहते हैं।

(2) मूलाधार को साढ़े तीन वलयों से लपेट कर प्रसुप्त रहने वाली शक्ति को मूलाधार कुण्डलिनी कहते हैं।

21.3.1 कुण्डलिनी का स्वरूप एवं स्थान – हठप्रदीपिका में तृतीय उपदेश के प्रथम श्लोक में कुण्डलिनी का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहिनायकः।

सर्वेषां योगतन्त्राणां तथा धारो हिकुण्डली॥

अर्थात् जिस प्रकार सर्पों के स्वामी शेषनाग पर्वत वन सहित सम्पूर्ण पृथ्वी के आधार हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण योग-तन्त्रों का आधार कुण्डली है। प्रस्तुत श्लोक में शेषनाग के समान ही कुण्डलिनी की महत्ता का बखान किया गया है।

कुण्डलिनीशक्ति कन्द जो कि मूलाधार में स्थित है, के ऊपरी भाग में सोई हुई टेढ़ी-मेढ़ी सर्प में समान आकार वाली होती है। जो कि इड़ा-पिंगल नाड़ियों के बीच में स्थित है। कुण्डलिनी $3\frac{1}{2}$ फेरे लगाये अपनी पूँछ को अपने मुँह में दबाये मूलाधार में सोई अवस्था में रहती है। ये तीन फेरे सत, रज, तम तीन गुणों, चेतना की तीन अवस्था जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति का प्रतीक हैं और आधा फेरा निरुद्धावस्था का प्रतीक है जो जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्तावस्था से ज्यादा ऊँची अवस्था है। इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति के $3\frac{1}{2}$ फेरे पूरे ब्रह्माण्ड एवं चेतना की समस्त अवस्थाओं का प्रतीक है।

21.3.2 कुण्डलिनी शक्ति के विभिन्न नाम – कुण्डलिनी शक्ति को विभिन्न नामों से जाना जाता है – कुटिलांगी, कुण्डलिनी, भुजंगी, शक्ति, ईश्वरी, कुण्डली, अरुन्धती, तपस्विनी आदि। हठप्रदीपिका के तृतीय उपदेश के 100वें श्लोक में उपरोक्त नामों की चर्चा मिलती है।

21.3.3 कुण्डलिनी शक्ति के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के मत – पाश्चात्य विद्वानों ने कुण्डलिनी शक्ति को अपने-2 अनुभवों के आधार पर इस प्रकार से समझाया है—

- चैनिक योगदीपिका में कुण्डलिनी शक्ति को स्पिरिट फायर कहा गया है।
- सर्पन्टफायर के नाम से भी कुण्डलिनी शक्ति को जाना जाता है। क्योंकि वह सर्पनाम स्वरूप वाली उपमा से जानी जाती है।
- मैडम ब्लैवेट्स्की ने इसको वैश्विक विद्युत शक्ति (कॉस्मिक इलैक्ट्रिसिटी) कहती हैं।
- कुण्डलिनी शक्ति की तीव्रतम गति के विषय में मादाम ब्लैवेट्स्की लिखती हैं कि – प्रकाश की गति 1,85,000 मील प्रति सेकेण्ड होती है, परन्तु कुण्डलिनी शक्ति की गति इससे भी तेज 3,45,000 मील प्रति सेकेण्ड होती है।
- सर जॉन् वुडरफ कुण्डलिनी के स्वरूप को वर्णित करते हुए कहते हैं कि – “Shortly Stated Energy (Shakti) polarises itself two forms, namely. Static or Potential (Kundalini) dynamic (the working forces of the body as prana.)”

- कुण्डलिनी के विषय में आर्थर ऑवलन् इस प्रकार से कहते हैं – “It is the individual bodily representative of the great Cosmic Power (Shakti), which create and sustains the universe.”

हमारी भारतीय संस्कृति में ईश्वर की मान्यताओं को लेकर विभिन्न मत हैं और ये सब मत अपनी-अपनी मान्यताओं की प्रमाणिकता के आधार पर अपनी बात को सिद्ध करते हैं साथ ही उसके प्रमाण भी देते हैं। जैसे ईश्वर को दो रूपों में जाना जाता है एक साकार एवं दूसरा निराकार। साकार रूप मूर्तियों, प्रतीकों एवं चिन्हों के रूप में जाना जाता है और निराकार रूप आकार की सीमा में बँधा नहीं रहता है। ठीक इसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को भी ऊर्जा के दो रूपों में जाना जा सकता है—

(1) स्थिर (potential) ऊर्जा एवं (2) गतिशील (kinetic) ऊर्जा।

कुण्डलिनी शक्ति के स्वरूप को समझने के लिए साकार स्वरूप की मान्यता सहायक होती है। कुण्डलिनी स्थिर ऊर्जा के रूप में शक्ति का प्रतीक है, एवं कुण्डलिनी गतिशील ऊर्जा के रूप में काली का प्रतीक होती है। कुण्डलिनी जागरण की प्रारम्भिक अवस्था में कुण्डलिनी को संभाल पाना कठिन होता है। उस समय ये काली के स्वरूप की तरह ही विकराल रूप में होती है। रक्त से लपलपाती जीभ तथा नरमुण्डों की माला गले में पहने हुए रजो गुण और मृत्यु की प्रबलता को दर्शाती हुई काली के स्वरूप के सदृश्य ही कुण्डलिनी का स्वरूप प्रारम्भ में इतना भयानक होता है। परन्तु इसके कारण ही व्यक्ति में दिव्यता प्राप्त होती है। इस भयानक दृश्य और अनुभव के बाद व्यक्ति का नया स्वरूप धीरे-धीरे सामने आने लगता है। ठीक उसी प्रकार जैसे रात के अंधेरे के बाद ही सुबह प्रकाश दिखता है। प्रतीक रूप में हम देखते भी हैं कि भगवान शिव भी देवी काली को नियंत्रित कर पाने में सफल नहीं हो पाये थे। उस शक्ति काली ने शिव को भी अपने बल से नीचे फेंक दिया था और उन पर अपने भयंकर स्वरूप के साथ खड़ी को गयी थी। ऐसे में देवताओं द्वारा उनकी स्तुति कर उनको प्रसन्न एवं शान्त किये जाने पर वे नियंत्रित हो पायी थीं। हम कह सकते हैं कि योग दर्शन में सुषुप्त कुण्डलिनी का सबसे पहला जागृत स्वरूप काली का है जो कि भयंकर एवं अनियंत्रित शक्ति है।

जब साधक अपने नियंत्रण में रखते हुए कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करता है तो वह उससे अनेक लाभ प्राप्त करता है। उस समय वह कुण्डलिनी शक्ति दुर्गा के रूप की तरह स्थिर शक्ति वाली हो जाती है। दुर्गा शक्ति का स्वरूप शान्त, प्रसन्न, शुद्ध, उदार गुणों से युक्त माना जाता है। यह एक अचेतन शक्ति है जो अष्टभुजा वाली शेर के ऊपर बैठी हुई अत्यन्त सुन्दर दिखने वाली देवी का स्वरूप है।

21.4 कुण्डलिनी जागरण

(1) हठप्रदीपिका में कुण्डलिनी शक्ति जागरण की प्रक्रिया के साथ में एक साधन गुरु कृपा भी बताया गया है। उसमें वर्णन मिलता है कि—

सुप्तागुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।

तदा सर्वाणी पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च॥ (3/2 ह० प्र०)

अर्थात् — गुरु के अनुग्रह से जब प्रसुप्त कुण्डली जग जाती है तब सभी पद्म (चक्र) और सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

(2) मुद्राओं के अभ्यास द्वारा भी कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है जिसका वर्णन हठ प्रदीपिका में इस प्रकार से है —

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।

ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्॥ (3/5 ह० प्र०)

अर्थात् – सुषुम्ना के मूल स्थान में सोती हुई कुण्डलिनी को जगाने के लिये पूर्ण प्रयास के साथ मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिये।

सामान्यतः मुद्राओं से पूर्व शुद्धिक्रिया, आसन एवं प्राणायाम का विधान बताया जाता है। इन अभ्यासों में पूर्ण पारंगत होने के बाद ही मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिये। क्रमबद्ध अभ्यास ही योग में पूर्ण सफलता प्रदान करना है। अन्यथा अभ्यर्थी को लाभ के स्थान में हानि का सामना करना पड़ सकता है।

(3) गायत्री मंत्र के जाप द्वारा भी कुण्डलिनी शक्ति की जागृति सम्भव होती है। मानसिक स्तर पर भावनात्मक प्रगाढ़ता के साथ मंद गति से गायत्री मंत्र का जाप करने पर इस महान शक्ति का जागरण सम्भव होता है। परन्तु इसके साथ कुछ नियमों एवं तपस्चर्या का पालन करते हुए ये किया जाता है।

कुण्डलिनी एक सुषुप्त शक्ति है जो मूलाधार स्थान में निष्क्रिय अवस्था में पड़ी रहती है। यह हमारे शरीर में उपस्थित तीन मुख्य नाड़ी इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना में से सुषुम्ना के भीतर से होती हुई मूलाधार से सहस्रार में जाकर शिव से मिलती है। ये हमारे मस्तिष्क में पहुँचने के बाद एक विस्फोट करती है जो हमारी चेतना के स्तर को बढ़ा देता है। उस समय व्यक्ति के चक्षु खुल जाते हैं और वह भविष्य तक को देख पाता है।

सामान्यतः व्यक्ति जिन कर्मों से अपना प्रस्तुतिकरण कर पाता है जैसे संगीत, नृत्य, कविता, लेखन, विज्ञान, पेन्टिंग, लड़ाई आदि ये सब कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने से ही सम्भव है।

कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से व्यक्ति में दिव्य प्रकाश की उत्पत्ति हो जाती है। उसे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है उसकी प्राथमिकताएँ उसके मस्तिष्क की सोच एवं उसकी आसक्ति आदि में परिवर्तन आ जाता है। उसके शरीर की समस्त कोशिकाएँ नयी ऊर्जा से परिपूर्ण हो जाती हैं। व्यक्ति को नये जीवन प्राप्ति जैसी अनुभूति होती है। उसकी आवाज एवं उसकी शरीर की सुगन्ध एवं हार्मोन्स में परिवर्तन आ जाता है। जब ये महान शक्ति जाग्रत होती है उस समय कम शक्ति से युक्त व्यक्ति जिसका की मस्तिष्क कम सक्रिय रहता है एवं जिसकी कोशिकाओं में भी सामान्य ऊर्जा रहती है वह व्यक्ति दिव्य क्षमताओं से युक्त हो जाता है। उसका मस्तिष्क पूर्ण रूप से सक्रिय हो जाता है तथा शरीर की समस्त कोशिकाएँ ऊर्जावान हो जाती हैं। ये सामान्य से कई ऊपर की स्थिति होती है।

कुण्डलिनी शक्ति जागरण का प्राथमिक लक्षण ये होता है कि व्यक्ति को ऐसा लगता है कि उसके शरीर के समस्त अंग बहुत तेजी से कांप रहे हों वैसे जैसे कि एक गाड़ी जब चलना प्रारम्भ करती है तो वह तेजी से हिलती है। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति को आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है। साथ ही उसका मस्तिष्क तेज उष्णता के अनुभव के साथ भारीपन का अनुभव करता है। उसे नशे जैसी अनुभूति होने लगती है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के समय व्यक्ति छः लक्षण अनुभव करता है जो इस प्रकार से हैं—

- (1) परमानन्द की प्राप्ति
- (2) पूरे शरीर में तेज कम्पन्न
- (3) शरीर में नयी ऊर्जा का संचार
- (4) नशे जैसे अनुभूति
- (5) निन्द्रा

(6) चेतना के उच्च स्तर की प्राप्ति

21.4.1 कुण्डलिनी जागरण की क्रिया विधि – कुण्डलिनी ऊर्जा स्थूल शरीर सम्बन्धित, मानसिक सम्बन्धी या ग्रह-नक्षत्र सम्बन्धी नहीं है इसलिए इसे इस स्तर पर नहीं पाया जा सकता। यह शक्ति इनसे ऊँचे स्तर से सम्बन्धित है जिसे हम कारण शरीर कहते हैं। जो वस्तु, समय की सीमा से परे है। यह शक्ति मूलाधार में उपस्थित अचेतन शक्ति को जाग्रत कर उसको चेतना के उच्चतम केन्द्र से जोड़ती है जिसे सहस्रार कहते हैं। जब शक्ति और शिव का मिलन होता है तब प्रकाश उत्पन्न होता है। शिव का स्थान सहस्रार में माना जाता है। कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना के भीतर ब्रह्मनाडी से होती हुई मेरुदण्ड में उपस्थित सात चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार में शिव से जाकर मिलती है। चक्रों का भेदन करते हुए ऊपर चढ़ती हुई कुण्डलिनी शक्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व में दिव्य परिवर्तन उत्पन्न करती है। सबसे महत्वपूर्ण चक्र आज्ञा चक्र होता है जिसे की व्यक्ति की तीसरी आँख भी कहते हैं। यह अन्तःज्ञान का केन्द्र होता है। आज्ञा चक्र मूलाधार एवं सहस्रार दोनों से जुड़ा रहता है। कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में अचेतन रूप में रहती है। जो जाग्रत होने पर चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में जाकर शिव जो कि परम चेतन स्वरूप हैं उनसे जा मिलती है। ये शक्ति जाग्रत होने पर व्यक्ति के स्थूल शरीर को प्रकाशवान बना देती है। व्यक्ति के मस्तिष्क में उपस्थित पिट्यूटरी ग्लेण्ड जो कि मास्टर ग्लेण्ड हैं सहस्रार से ही सम्बन्धित हैं। कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होने पर व्यक्ति चेतना के उच्चतम स्तर में गमन करता है। ऐसी स्थिति में उसका शारीरिक प्रस्तुतिकरण भी दिव्य हो जाता है, जो कि सामान्य से बहुत अलग होता है।

21.5 कुण्डलिनी ऊर्जा एवं आत्मज्ञान

कुण्डलिनी का सहस्रार में पहुँचना, शक्ति का शिव से मिलन है और यहाँ से आत्मज्ञान की शुरुआत होती है। इस स्थिति में व्यक्ति का अहं नष्ट हो जाता है और व्यक्ति में "मैं" का भाव पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है। इस समय अभ्यासी एक तरह से मृत्यु का अनुभव करता है साथ ही उसके भीतर इस समय एक नया व्यक्तित्व जन्म लेता है। अभ्यासी में मैं और तू का भाव समाप्त हो जाता है। वह पूरे ब्रह्माण्ड को एक ही नजरिए से देख पाता है। लक्ष्य प्राप्ति के प्रयास की शुरुआत से लेकर और लक्ष्य प्राप्ति तक का यह समय एकाकी सजगता से पूर्ण होता है। जो कि अद्वितीय सुख से परिपूर्ण है। यह ही ब्रह्माण्डीय चेतना है। यही वह क्षण है जिसमें शिव और शक्ति को अलग-2 नहीं देखा जा सकता क्योंकि वे इस क्षण एक हो चुके होते हैं। साधक की समस्त जिज्ञासाएँ समाप्त हो चुकी होती हैं। उसका अब कोई प्रश्न उत्तर रहित नहीं रहता है। वह इस अवस्था में शान्त एवं पूर्ण सुख के साथ रहता है।

21.6 कुण्डलिनी एवं योग

योग की विभिन्न पद्धतियों में से हठयोग विद्या के अन्तर्गत हमें कुण्डलिनी शक्ति के बारे में चर्चा मिलती है। इसमें शरीर और मन की एक विशेष स्थिति से ऊपर उठकर की जाने वाली प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। जैसा कि आप पहले भी जान चुके हैं कि हठ योग हकार एवं ठकार के मिलन की प्रक्रिया है। हकार यानि की सूर्य नाड़ी जो कि मूलाधार से शुरु होकर दायें नासाछिद्र से समाप्त होती है तथा ठकार यानि की चन्द्र नाड़ी जो कि मूलाधार से शुरु होकर हमारे बायें नासाछिद्र में जाकर समाप्त होती है। इन नाड़ियों में ही जीवनीशक्ति गति करती है जिसे प्राण के रूप में जाना जाता है। प्राण को सामान्यतया

वायु कह देते हैं परन्तु वायु और प्राण में बहुत अन्तर होता है। वायु बहुत सारी गैसों का मिश्रण होती है जबकि प्राण, वायु का शुद्ध सात्विक अंश होता है। प्राण के अभाव में जीव क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता जबकि वायु के बगैर व्यक्ति कुछ देर रह सकता है। प्राण शक्ति की व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। व्यक्ति के जीवन के हर एक पहलू में प्राण शक्ति कार्य करती है। कुण्डलिनी शक्ति की अवधारणा में भी प्राण शक्ति ही कार्य करती है। नाड़ियों में प्रवाहित होने वाली शक्तिशाली प्राण ऊर्जा को साधक अपने नियन्त्रण द्वारा लक्ष्य विशेष की ओर प्रवाहित करता है और इसका अभ्यास करते हुए लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

कुण्डलिनी योग के अनुसार व्यक्तिगत एवं ब्रह्माणीय रूप में प्राण की उपस्थिति को एक ठोस सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। योगियों के मतानुसार यह सम्भव है कि व्यक्ति अपने तंत्रिका तंत्र के ऐच्छिक नियंत्रण द्वारा प्राण शक्ति के दिव्य प्रवाह को मस्तिष्क की ओर गति दे सकता है। योगियों ने अपने अनुभवों से ये भी जाना है कि एकाग्रता जो कि योग की समस्त पद्धतियों में तथा योग में सफलता के लिए मुख्य साधन है। ये ही मूल आधार है ऐच्छिक नियंत्रण का जिसके द्वारा कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है।

उन्होंने यह भी जाना कि व्यक्ति मस्तिष्ककीय नियन्त्रण एवं एकाग्रता में एक स्तर तक कुशलता प्राप्त कर लेने से अपनी मेरुदण्ड के भीतर से दिव्य प्रकाश को मस्तिष्क तक थोड़े-2 समय के लिये पहुँचा सकते हैं। अभ्यास द्वारा हम इसकी गति में वृद्धि एवं इसकी मस्तिष्क में स्थिरता का समय भी बढ़ा सकते हैं। इससे मस्तिष्क में दिव्य चमत्कारी प्रभाव प्राप्त होते हैं जो कि भौतिक, नाशवान, सांसारिक लोक द्वारा सम्भव नहीं है।

मेरुदण्ड के भीतर जिस के द्वारा ये दिव्य शक्ति ऊर्ध्वगामी होती है उस मार्ग को योगियों ने सुषुम्ना के नाम से जाना। जो कि योग में वर्णित नाड़ियों में मुख्य नाड़ी कही जाती है। योग में अनेकों नाड़ियों की चर्चा मिलती है। आधुनिक वैज्ञानिक योग की इन गहनतम शक्तियों को अभी अपने आविष्कार द्वारा सिद्ध कर पाने में सक्षम नहीं हो पाये हैं, परन्तु फिर भी वे तंत्रिका तंत्र पर व्यक्ति के नियंत्रण की बात को स्वीकार करते हैं जिससे व्यक्ति दिव्य चमत्कार कर पाने में सक्षम हो जाता है।

21.7 कुण्डलिनी शक्ति जागरण में मानव शरीर की महत्ता

मानव शरीर एक मशीन है जो निरन्तर कार्य करती रहती है। अनेकानेक तन्त्र इसमें कार्य करते रहते हैं जो कि विभिन्न अंग अवयवों से युक्त होते हैं। शरीर में उपस्थित प्राण शक्ति कोशिकाओं तक पहुँचकर उन्हें ऊर्जावान बनाती हैं। यह प्राण शक्ति मस्तिष्क को अधिक ऊर्जा प्रदान करती है जिससे वह महत्वपूर्ण कार्य कर पाने में सफल हो। मस्तिष्क हमारे शरीर का मुख्य अंग होता है जो शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों तरह के प्रभावों से युक्त होता है। इसी के द्वारा शरीर के सारे कार्य सुचारु रूप से नियंत्रित हो पाते हैं। इसलिये मस्तिष्क का हमारे शरीर में बहुत महत्व होता है।

मानव शरीर चेतना के एक सीमित दायरे तक ही पहुँच पाता है जो कि मस्तिष्क की क्षमता एवं शरीर के अन्य अंग अवयवों की क्षमता पर निर्भर करता है। हर व्यक्ति के शरीर की अपनी एक निश्चित चेतना शक्ति होती है जिसके कारण ही उसकी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति उसी सीमा में कार्य कर पाती है।

शरीर की इस सीमित शक्ति के कारण ही हमारी इन्द्रियो (ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ) की कार्य क्षमता भी सीमित होती है। यही कारण है कि एक सामान्य व्यक्ति अपनी सीमा से ऊपर उठकर अतिन्द्रिय क्षमताओं का अनुभव नहीं कर पाता है। वह उच्चतम चेतना की हल्की सी

कल्पना कर पाने में भी सक्षम नहीं हो पाता। यह चेतना शक्ति हर व्यक्ति में अलग-2 स्तर की पायी जाती है जिसका प्रयोग शारीरिक और मानसिक क्रियाविधि के रूप में व्यक्ति अपने जीवन में करता है। यह पूर्ण चेतना शक्ति का बहुत छोटा सा हिस्सा होता है।

सामान्यतः माना जाता है कि ऐसी कोई क्रिया पद्धति नहीं है जो कि मानवीय मस्तिष्क के प्राकृतिक सीमित दायरे को बढ़ाते हुए उसकी क्षमता में वृद्धि कर पाये। उसे सामान्य से ज्यादा क्षमतावान बनाते हुए असीम क्षमताओं से परिपूर्ण कर दे। मस्तिष्क की शक्ति को कुछ हद तक तो बढ़ाया जा सकता है जिसमें अध्ययन आदि प्रक्रियायें सहायक होती हैं। परन्तु मस्तिष्क की क्षमता इतनी बढ़ा देना कि व्यक्ति को इन्द्रियों से परे का ज्ञान हो जाये, और उसे शरीर की क्षमता से अधिक अद्वितीय शक्ति प्राप्त हो जाये, तो ऐसे प्रमाण हमें वर्तमान में सामान्यतया सरलता से प्राप्त नहीं होते हैं। परन्तु मानवीय मस्तिष्क की चेतना को सामान्य से उच्च स्तर पर पहुँचाना सम्भव है। जिसका एक महत्वपूर्ण साधन योग विद्या है। योग के समस्त ग्रन्थ पूर्णतया इसी ओर अग्रसित करने की पद्धति को बताते हैं। इन ग्रन्थों का मूल उद्देश्य मानवीय चेतना को बढ़ाना एवं उसका उत्कर्ष ही है।

आधुनिक जीव विज्ञान इस बात को स्वीकार नहीं करता कि व्यक्ति का मस्तिष्क चेतना के उच्चतम शिखर को छू ले और उसके शरीर में उसका कोई प्रभाव न हो। वर्तमान की कुछ प्रक्रियाएँ जैसे आसन, प्राणायाम, ध्यान, मंत्र, उपवास, पूजा-पाठ, प्रार्थना आदि व्यक्ति के शरीर एवं मन दोनों को प्रभावित करती हैं। तो ये स्वाभाविक ही है कि उपरोक्त पद्धतियों द्वारा जो चेतनावस्था में आने वाला परिवर्तन है वह व्यक्ति के शरीर में भी परिवर्तन उत्पन्न करता है।

प्राचीन योगियों ने अपनी साधना पद्धति के दौरान शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के प्रभावों को अपने ऊपर अनुभव किया लेकिन उन्होंने क्रिया के शारीरिक प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित न करके क्रिया के आध्यात्मिक प्रभाव पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया। यही कारण है कि मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तन की तुलना में हमें यौगिक ग्रन्थों में शारीरिक परिवर्तनों एवं प्रभावों का वर्णन कम मिलता है।

यहाँ तक कि कुण्डलिनी योग में भी आध्यात्मिक आधार को योग में पूर्ण सफलता का एकमात्र साधन नहीं माना गया है। वहाँ भी शारीरिक अनुशासन एवं शरीर के आन्तरिक अंगों की शुद्धि की बात को प्राथमिकता दी जाती है। उसके बाद ही यौगिक आध्यात्मिक प्रक्रिया को अभ्यास करने का विधान बताया जाता है। यदि हम आध्यात्मिक अभ्यास एवं कुण्डलिनी शक्ति जाग्रति आदि के अभ्यासों पर दृष्टिपात करते हैं तो पायेंगे कि इन समस्त पद्धतियों एवं अनुभवों का जो माध्यम है वह एक मात्र जीवित शरीर ही है।

समस्त योगाभ्यासों को करने एवं उनमें पारंगत होने के लिए एक उचित स्वास्थ्य स्तर को बनाये रखना परम आवश्यक होता है। तभी हम इन अभ्यासों को कर पाते हैं। एक अस्वस्थ शरीर इन अभ्यासों को कर पाने में सक्षम नहीं हो सकता। अस्वस्थ शरीर द्वारा ये कठिन अभ्यास संभव नहीं होते हैं। तो इनके बाद किये जाने वाले और कठिन अभ्यास कैसे संभव हो सकते हैं।

यौगिक अभ्यास के अन्तर्गत आने वाली शुद्धि क्रियाएँ जिनका वर्णन इस प्रकार से है –

- (1) नेति— इसमें शरीर से नाक तक की सफाई की जाती है जिसमें जल और सूत्र का प्रयोग होता है।
- (2) धौति— इसमें सूती वस्त्र को खाकर अमाशय की सफाई की जाती है।
- (3) वस्ति— इसमें पानी द्वारा बड़ी आँत की सफाई की जाती है।

(4) त्राटक— इसमें आँखों को एक टक देखा जाता है।

(5) कपालभाँति— इसमें श्वास की विशेष प्रक्रिया द्वारा मस्तिष्क की शुद्धि की जाती है।

इसके साथ ही प्राणायाम की प्रक्रिया के अन्तर्गत श्वास को रोककर उन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। आसन में शरीर को विशेष आकृति प्रदान कर उस पर स्थिरता के साथ लम्बे समय तक बैठने का अभ्यास किया जाता है। ये आसन 84 लाख योनियों के अनुसार 84 लाख की संख्या में ही बताये गये हैं। जिनका अभ्यास साधक को करना होता है।

अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि उपरोक्त समस्त शारीरिक अभ्यास साधक की आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही हैं। कुण्डलिनी योग में साधक के योगाभ्यास द्वारा शरीर को सुदृढ़ बनाने की प्रक्रिया कुण्डलिनी जागरण की प्रथम प्रक्रिया है। इससे उसका शरीर गतिशील शक्ति के उस विस्फोट से होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को सहजता से सहन करने में सक्षम हो पाता है।

अतः हम कह सकते हैं कि मानव शरीर कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया में शरीर का स्वस्थ होना परम आवश्यक है इसके अभाव में ये अभ्यास पूर्ण होना सम्भव नहीं है।

21.8 कुण्डलिनी जागरण के लाभ —

हठ प्रदीपिका में वर्णन मिलता है कि जिस प्रकार चाभी द्वारा घर का दरवाजा (किवाड़) खोला जाता है ठीक उसी प्रकार योगी कुण्डलिनी के द्वारा मोक्ष के दरवाजे को खोलता है और उसका भेदन करता है अर्थात् उस पर गति करता है।

आगे कहा गया है कि कन्द के ऊपरी भाग में सोयी हुई कुण्डलिनी योगियों के मोक्ष के लिये होती है जो इस शक्ति को जान जाता है वह वास्तव में योग को भी जान लेता है परन्तु मूर्ख लोगों के लिए यही शक्ति बन्धन का कारण बनती है। कुण्डलिनी जागरण के अनेक लाभ हैं किन्तु प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं :-

1. व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक योग्यताएं एवं क्षमताएं अत्यधिक बढ़ जाती हैं।
2. मनुष्य अद्वैत ऋद्धियाँ एवं सिद्धियाँ का स्वामी बन जाता है।
3. किसी के मन की बात जान लेना, भविष्य का पूर्व ज्ञान हो जाना, बहुत दूर की घटनाओं और दृश्यों को देख लेना, एक साथ कई रूप बना लेना आदि अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।
4. चाहे जब गायब हो जाना, चाहे जहाँ प्रकट हो जाना आदि क्षमताएँ हासिल होना।
5. उत्तम स्वास्थ्य, प्रभावशाली व्यक्तित्व, नेतृत्व क्षमता, प्रभावी भाषण कला आदि योग्यताएं प्राप्त होना।
6. स्थाई प्रसन्नता एवं परमानन्द की प्राप्ति।
7. समस्त विकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, प्रमाद आदि पर पूर्ण नियंत्रण एवं समस्त दुख, भय, चिंता, निराशा, अभाव आदि कमजोरियों का पूर्णतः निवारण हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पिक प्रश्न —

(1) कुण्डलिनी के स्वरूप व स्थान का वर्णन हठप्रदीपिका के तृतीय उपदेश के किस श्लोक में किया गया है?

(अ) प्रथम

(ब) द्वितीय

- (स) तृतीय (द) उपरोक्त सभी में
 (2) मादाम ब्लैवेट्स्की ने कुण्डलिनी शक्ति की तीव्रतम गति बताई है?
 (अ) 345000 मील प्रति सेकेण्ड (ब) 34400 मील प्रति सेकेण्ड
 (स) 455000 मील प्रति सेकेण्ड (द) उपरोक्त कोई नहीं।
 (3) कुण्डलिनी शक्ति को अन्य नामों से जाना जाता है।
 (अ) कुटिलागी (ब) भुजंगी
 (स) तपस्विनी (द) उपरोक्त सभी।
 (4) हठप्रदीपिका में तृतीय उपदेश के कौन से श्लोक में कुण्डलिनी के नामों की चर्चा मिलती है।
 (अ) 100वें (ब) 110वें
 (स) 99 वें (द) उपरोक्त सभी में ।

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –

- (1) व्यक्ति के मस्तिष्क में पिट्यूटरी ग्लेण्ड है, जो चक्र से सम्बन्धित है।
 (2) मेरूदण्ड के भीतर जिसके द्वारा कुण्डलिनी शक्ति उर्ध्वगामी होती है, उस मसर्ग को योगियों ने नाम से जाना है।
 (3) चैनिक योगप्रदीपिका में शक्ति को स्पिरिट फायर कहा गया है।
 (4) साधक के योगाभ्यास द्वारा शरीर को सुदृढ़ बनाने की प्रक्रिया कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया है।

सत्य और असत्य को चिन्हित करें –

- (1) कुण्डलिनी जागरण के पूर्व शरीर की शुद्धि की आवश्यकता नहीं होती है। (.....)
 (2) कुण्डलिनी जागरण से व्यक्ति की शरीरिक व मानसिक योग्यताएं एवं क्षमताएँ अत्यधिक बढ़ जाती है। (.....)
 (3) परमपिता का अर्द्धनारीश्वर भाग शक्ति कहलाता है। (.....)
 (4) हठयोग हकार एवं ठकार के मिलन की प्रक्रिया नहीं है। (.....)

21.9 सारोश

प्रस्तुत इकाई में आपने कुण्डलिनी सम्बन्धित समस्त विषयों की जानकारी को विस्तार से जाना। आपने जाना कि –

परमपिता का अर्द्धनारीश्वर भाग शक्ति कहलाता है। यह ईश्वर की पराशक्ति है (प्रबल लौकिक ऊर्जा शक्ति)। जिसे हम राधा, सीता, दुर्गा या काली आदि के नाम से पूजते हैं। इसे ही भारतीय योगदर्शन में कुण्डलिनी कहा गया है। यह दिव्य शक्ति मानव शरीर में मूलाधार में (रीढ़ की हड्डी का निचला हिस्सा) सुषुप्तावस्था में रहती है। यह रीढ़ की हड्डी के आखिरी हिस्से के चारों ओर साढ़े तीन फैरे लगाकर कुण्डली मारे सोए हुए साँप की तरह सोई रहती है। इसीलिए यह कुण्डलिनी कहलाती है।

यह कुण्डलिनी जाग्रत होती है तो यह सहस्रार में स्थित अपने स्वामी से मिलने के लिए ऊपर की ओर उठती है। जाग्रत कुण्डलिनी पर समर्थ सद्गुरु का पूर्ण नियंत्रण होता है। वे ही उसके वेग को अनुशासित एवं नियंत्रित करते हैं। गूरुकृपा रूपी शक्तिपात दीक्षा से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर 6 चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार तक पहुँचती है। कुण्डलिनी द्वारा जो योग करवाया जाता है उससे मनुष्य के सभी अंग पूर्ण स्वस्थ हो जाते हैं। साधक का जो अंग बीमार या कमजोर होता है, मात्र उसी की यौगिक क्रियाएँ ध्यानावस्था में होती हैं एवं कुण्डलिनी शक्ति उसी बीमार अंग का योग करवाकर उसे पूर्ण

स्वस्थ कर देती है। इससे मानव शरीर पूर्णतः रोगमुक्त हो जाता है, तथा साधक ऊर्जा युक्त होकर आगे की आधात्मिक यात्रा हेतु तैयार हो जाता है। शरीर के रोगमुक्त होने के सिद्धयोग ध्यान के दौरान जो बाह्य लक्षण हैं, उनमें यौगिक क्रियायें जैसे दायें-बायें हिलना, कम्पन्न, झुकना, लेटना, रोना, हँसना, सिर का तेजी से घुमना, ताली बजाना, हाथों एवं शरीर की अनियंत्रित गतियाँ, तेज रोशनी या रंग दिखाई देना या अन्य कोई आसन, बंध, मुद्रा या प्राणायाम की स्थिति आदि मुख्यतः होती हैं।

“कुण्डलिनी शक्ति” एक ऐसा ही माध्यम है जिसके जागरण से मनुष्य आत्मसाक्षात्कार की ओर बढ़ सकता है यह मानव जीवन में छिपी एक ऐसी शक्ति केन्द्र है जो नर से नारायण बनने की महानतम क्रिया का सम्पादन करती है। हमें हमारे भीतर छिपे उन सात द्वारों का परिचय कराती है, जिसके माध्यम से आत्म जागरण कर मानव विलक्षणता को प्राप्त करता है।

हमारे ऋषि-मुनियों ने दिव्य ज्ञान कैसे पाया? कैसे यहीं बैठे उन्होंने वो सब कुछ कह डाला और लिख डाला जो अत्यन्त ही रहस्यमयी रहा। पंचमहाभूतों से बने शरीर में दृश्यता है पर त्रियामी शक्तियाँ वायु, अग्नि और आकाश से बने स्थूलशक्तियों को हम देख नहीं पाते अनुभूत ही करते हैं। इसे देख पाना तभी संभव है जब हममें स्वयं दिव्यता का संचार हो और यह तभी संभव हो सकता है जब हमारे ज्ञान चक्षु खुले हों। हमारे शरीर में तीन प्रधान नाड़ियाँ हैं, जो हमारे शरीर को नियंत्रित किये हैं। इडा अर्थात् दायाँ स्वर, पिंगला अर्थात् बायाँ स्वर और सुषुम्ना नाड़ी जो हमारे श्वास नलिका के साथ हमारे मस्तिष्क में स्थित है जिसका जागरण ही त्रिनेत्र का खुलना कहा जाता है। यही सिक्स सेन्स है। श्वास-प्रश्वास के द्वारा ऑक्सीजन गैस हमारे शरीर को ऊर्जा प्रदान कर रही है। जो श्वास हम लेते हैं वह सूक्ष्म रूप से हमारे भीतर प्रकाश उत्पन्न कर बाहरी और आंतरिक अनुभूतियाँ कराता है इसी को ही प्राण कहा गया है। यही श्वास-प्रश्वास के द्वारा जब सुषुम्ना नाड़ी में सम्मिश्रित होता है तब दिव्य प्रकाश उत्पन्न होता है। इसी को ज्ञान का जागरण कहते हैं। इसी को कुण्डलिनी कहा गया है। इसके द्वारा हम देह के ही नहीं समस्त ब्रम्हांड के रहस्यों को जान सकते हैं।

21.10 शब्दावली

- कौतुहल – उत्साह
- वलय – गोले
- पंचमहाभूत – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश
- अतीन्द्रिय – इन्द्रियों से परे
- उष्णता – गर्मी

21.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- बहुविकल्पिय प्रश्नों के उत्तर –

(1). अ	(2). अ	(3). द	(4). अ
--------	--------	--------	--------
- रिक्त स्थानों के उत्तर –

(1) सहस्त्रार	(2) सुषुम्ना	(3) कुण्डलिनी	(4) प्रथम
---------------	--------------	---------------	-----------
- सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –

(1) असत्य	(2) सत्य	(3) सत्य	(4) असत्य
-----------	----------	----------	-----------

21.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हठप्रदीपिका – स्वात्माराम सूरी
 2. योगविज्ञान – विज्ञानानंद सरस्वती
 3. कुण्डलिनी योग – सत्यानंद सरस्वती
 - 4- Kundalini – Pandit Gopi Krishna
 - 5- Kundalini for Beginners – Dr. Ranvindra Kumar
-

21.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कुण्डलिनी से आप क्या समझते हैं?
2. कुण्डलिनी का अर्थ समझाते हुए विभिन्न विद्वानों द्वारा दिये गये मतों का वर्णन करें।
3. कुण्डलिनी शक्ति और आत्मज्ञान में क्या सम्बन्ध है?
4. कुण्डलिनी शक्ति जागरण प्रक्रिया का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए शरीर के महत्व को समझाये हुए।
5. आध्यात्मिक क्षेत्र में कुण्डलिनी का क्या योगदान है? स्पष्ट करें।

इकाई- 14 घेरण्ड संहिता में वर्णित धौति की विधि लाभ एवं सावधानियाँ

इकाई की संरचना

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 धौति
 - 14.3.1 अन्तः धौति
 - 14.3.2 दन्त धौति
 - 14.3.3 हृद धौति
 - 14.3.4 मूलशोधन
- 14.4 सारांश
- 14.5 शब्दावली
- 14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 14.8 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

योग वस्तुतः प्राचीनतम आर्ष ग्रन्थों से निकलना नवनीत है। योग की विविध विधाओं (ज्ञान, योग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग इत्यादि) के माध्यम से योगी अपने अभीष्ट की प्राप्ति करता है। हठयोग योग की एक महत्वपूर्ण शाखा है। जिसमें शुद्धिकरण की क्रियाओं में षट्कर्मों का उल्लेख किया गया है। महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता नामक पुस्तक में छ कर्म घट रूपी शरीर को शुद्धि के लिए बताये गये हैं जिनमें धौति कर्म सबसे पहला कर्म है। धौति का अर्थ धोने अर्थात् शुद्धिकरण के रूप में प्रयुक्त होता है।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

- धौति कर्म क्या है समझ सकोगे।
- धौति के विविध प्रकारों का विश्लेषण करेंगे।

- धौति के विविध लाभों को जान सकोगे।
- धौति कर्म करते समय सावधानियों का अध्ययन करेंगे।

14.3 धौति

प्रस्तुत इकाई में धौति कर्म का विस्तार से वर्णन किया गया है। धौति षट्कर्मों में सबसे पहला कर्म है। योग की अभीप्सा रखने वाले विद्यार्थियों में धौति के बारे में निम्न प्रश्नों के उत्तर जानने की अभिलाषा रहती है।

- धौति कर्म वस्तुतः क्या है ?
- धौति कर्म की विधि क्या है और यह कैसे की जाती है ?
- धौति कर्म के शरीर पर क्या प्रभाव पड़ते हैं ?
- धौति करते समय मुख्यतः कौन-कौन सी सावधानियाँ बरतनी चाहिए ?

अगले पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आप उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जान लेने में सक्षम हो जायेंगे। धौति अर्थात् धोना वाहय रूप से शरीर की शुद्धि के लिए हम तरह-तरह के उपाय करते हैं जैसे स्नान इत्यादि। पर अन्तःकरण की सफाई के लिए शरीर को शुद्ध करने के लिए महर्षि घेरण्ड ने धौति कर्म किया है। धौति कर्म के माध्यम से योगी विविध तत्वों जल, वायु, अग्नि, के माध्यम से घड़े रूपी शरीर की सफाई करता है।

महर्षि घेरण्ड ने घर रूपी शरीर की शुद्धि के लिए निम्न चार प्रकार की धौतियों का वर्णन किया है और पहले अध्याय के 13 वें श्लोक में कहा है।

‘अन्त धौतिर्दन्त धौतिर्हृद्घौतिर्मूलशोधनम्
धौतिचतुर्विधांकृत्वाघटं कुर्वन्ति निर्मलम्

घेरण्ड संहिता 1/13

अन्तः धौति, दन्त धौति, हृद् धौति और मूलशोधन के भेद से धौति कर्म चार प्रकार का माना गया है। इसके द्वारा योगी जन अपने शरीर को स्वच्छ कर अच्छा स्वास्थ्य बनाते हैं।

14.3.1 अन्त धौति – वस्तुतः शरीर और मन को विकार रहित बनाने के लिए शुद्धिकरण अत्यन्त आवश्यक है। विविध रोग भी अशुद्धि की अवस्था में ही जन्म लेते हैं। अन्तः धौति का अर्थ है— अन्तः अर्थात् आन्तरिक या भीतरी तथा धौति का कार्य है धोना अर्थात् आन्तरिक सफाई के रूप में अन्तः धौति का प्रयोग किया जाता है। अन्त धौति के निम्न चार प्रकार हैं।

(क) वातसार अन्त धौति: वात अर्थात् हवा या वायु और सार का अर्थ है तत्व अर्थात् वायु तत्व से अन्तःकरण की सफाई करना वातसार अन्तः धौति का प्रमुख उद्देश्य है। महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता में वातसार धौति की निम्न विधि बताई है।

काकचक्षु वदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः

अर्थात् कौवे की चोंच के समान दोनों ओठों को करके शनैः शनैः वायु को पीयें। पूर्णरूप से पान कर लेने पर पेट में उसका परिचालन करें और फिर उस वायु को निकाल दें।

क्रियाविधि—

(1) सर्वप्रथम किसी अभ्यस्थ ध्यान के आसन में बैठ जाये। (2) कमर सिर व गर्दन को एकदम सीधा रखें। (3) मुंह से कौवे की चोंच सा आकार बनायें। (4) धीरे-धीरे वायु का पान करते हुए पेट में भरने का प्रयत्न करें। (5) जब पूरी श्वास से पेट भर जाये तब शरीर ढीला कर वायु को उदर में घुमायें (6) धीरे-धीरे श्वास को दोनों नासाछिद्रों से बाहर निकाल दें।

लाभ —

- (1) इस गोपनीय क्रिया से शरीर निर्मल होता है। (2) यह कफ दोष को दूर करती है।
 (3) सभी रोगों को नष्ट करती है। (4) पाचन शक्ति को बढ़ाती है तथा जठराग्नि को भी तेज करती है।
 (5) अम्लर पित्त में बेहद लाभकारी है।

सावधानियाँ —

- (1) यह क्रिया हमेशा खाली पेट करें।
 (2) यह अभ्यास अधिकतम पाँच बार ही करना चाहिए।
 (3) अधिक वृद्ध व्यक्ति कमजोर व्यक्ति यह अभ्यास न करें।
 (4) हृदय रोगी या कोई बड़ा आपरेशन हुआ हो तो वह व्यक्ति इस अभ्यास को न करे।

(ख) वरिसार अन्तः धौति : वारि अर्थात् जल तथा सार का अर्थ है तत्त्व इस धौति में जल तत्त्व से अन्तःकरण की सफाई की जाती है अतः इसे वारिसार अन्तः धौति कहा जाता है। महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता के 17 वें व 18 वें श्लोक में कहा है।

“आकण्यं पूरयेद्धारि वक्त्रेण च पिबेच्छदनै

चालये दुदरेणैव चोदराद्रेचयेदधः

वारिसारे पर गोप्यं देहनिर्मल कारकम्

साधयेन्तपत्र यलेन देवदेहं प्रपधते”

घेरण्ड संहिता 17,18

अर्थात् :- मुख से धीरे-धीरे जल पीतें हुए कण्ठ तक जल से भर लेना है। इसके बाद उदर को चला कर जल को अधोमार्ग से निकाल देना है। यह वारिसार नामक धौति परम गोपनीय एवं शरीर को स्वच्छ करती है। इसका प्रयत्नपूर्वक साधन करने वाले योगी को देवताओं के समान शरीर की प्राप्ति होती है।

क्रियाविधि-

इस क्रिया को शंखप्रक्षालन भी कहते हैं।

- (1) एक बाल्टी में गुनगुना पानी लें तथा उसमें स्वादानुसार नमक डाल दें।
- (2) सर्वप्रथम दो गिलास गुनगुना पानी पीये फिर निम्न पाँच आसन त्वरित गति से करें।
 - ताडासन
 - तिर्यक ताडासन
 - कटि चक्रासन
 - तिर्यक भुजगांसन
 - उदराकर्षण

(3) फिर पुनः 2 गिलास पानी पीकर उपरोक्त आसनों को करें।

(4) जब तक शौच की इच्छा न हो उन क्रिया दोहराते रहें।

(5) 10-15 गिलास पानी पीकर जब उक्त क्रिया हो जाये तो विश्राम करें।

(नोट- उक्त यौगिक क्रिया का वर्णन आपको सिर्फ अध्ययन करने के लिये बताया जा रहा है। इस क्रिया को कुशल मार्गदर्शन में ही करें।)

लाभ-

यह शरीर की शुद्धि की सबसे महत्वपूर्ण क्रिया है इसके मुख्य लाभ निम्नांकित हैं-

- (1) इस क्रिया से समस्त पाचन संस्थान की सफाई होती है।
- (2) शरीर में अपशिष्ट पदार्थ (मल) पूर्ण रूप से निकल जाता है।
- (3) इस क्रिया से देव देह की प्राप्ति होती है।
- (4) योगी देवता के समान दिव्य, कान्तिमान, ओजस्वी हो जाता है।
- (5) मोटापे को कम करता है तथा शरीर हल्का हो जाता है।

सावधानियाँ -

- (1) इस अभ्यास को हमेशा कुशल, योगगुरु के सलाह में ही करें।
- (2) उच्च रक्तचाप हृदय रोग में यह अभ्यास सोंफ के पानी के साथ उचित मार्गदर्शन में किया जाता है।
- (3) गर्भवती स्त्री, हार्निया से पीडित व्यक्ति बिल्कुल इस अभ्यास को न करें।
- (4) अभ्यास के बाद व पहले दिन से ही रसाहार पतली खिचडी का सेवन ही करना चाहिए।

(5) चूंकि वारिसार धौति (शंखप्रक्षालन) से शरीर नाजुक हो जाता है। अतः 40 दिनों तक कोई एलोपैथिक दवाइयों का सेवन ना करें।

(ग) अग्निसार अन्तः धौतिः— अग्नि शब्द से आप सर्वविदित होंगे और सार का अर्थ है तत्व चूंकि इस अभ्यास से जठराग्नि बढ़ती है तथा पाचन क्रिया बढ़ती है इसलिए इसे अग्निसार अन्तः धौति कहा जाता है। महर्षि घेरण्ड कहते हैं।

‘नाभिग्रन्थि मेरुपृष्ठ रूतवारं चकारयेत्
अग्निसारमियं धौतियाग्निनां योगसिद्धदा
उदरामयजं त्व क्ययिं जठराग्नि विवर्द्धयेत्
एसा धौतिरूपरा गोप्या देवानापि दुर्लभा
केवलं धौतिमादत्रेण देवदेहं भवेद ध्रुवम्’

घेरण्ड संहिता 19—20

अर्थात् प्राण वायु को रोक कर नाभि को पृष्ठ भाग में लगायें। इससे अग्निसार धौतिकर्म सम्पन्न होता है। इससे सभी उदर रोग नष्ट होते हैं जठराग्नि तीव्र होती है। यह धौति कर्म अत्यन्त गोपनीय और देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। केवल इस कर्म के करने मात्र से देवताओं जैसा शरीर हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है।

क्रियाविधि—

- (1) वज्रासन, अर्धपद्मासन या सिंहासन में बैठें।
- (2) रीढ़ की हड्डी एक सीध में रखिए।
- (3) दोनों हाथ को तानकर घुटनों में रखिए।
- (4) मुंह खोलकर जीभ बाहर निकालकर पूरी श्वास को बाहर निकाल दीजिए।
- (5) श्वास को बाहर रोककर पेट को जल्दी—जल्दी अन्दर—बाहर करें। यह प्रयास रहे कि नाभि प्रदेश पृष्ठ भाग पर लगे।
- (6) कुछ पल आराम के बाद इस क्रिया को पुनः उचित मार्गदर्शन में दोहराये।

लाभ

- (1) पाचन सम्बन्धी विकारों को नष्ट करता है।
- (2) उदर गत मॉसपेशियों को मजबूत बनाता है।
- (3) जठराग्नि को तेज कर पाचक रसों का नियंत्रण करता है।
- (4) मानसिक रोंगों में अवसाद की अन्तर्मुखी अवस्था में लाभकारी है।
- (5) योग के आध्यात्मिक लाभ कुण्डलीनी जागरण में भी सहायक है।

सावधानियाँ

- (1) वस्तुतः योग की सभी क्रियायें खाली पेट की जानी हैं। अतः भोजन के बाद इसे नहीं करें।

(2) उच्चत चाप व हृदय रोगी इस अभ्यास को बिल्कुल ना करें।

(3) अल्सर, हार्नियों, दमा के रोगियों के लिए वर्जित है।

(4) शारीरिक क्षमता के अनुसार गुरु के निर्देश में ही करें।

(घ) बहिष्कृत अतःधौतिः— बहिष्कृत का अर्थ त्यागने छोड़ने या निकालने के अर्थ में प्रयोग होता है। इस धौति में अन्तःकरण से अवशिष्ट वायु को गुदा मार्ग से बाहर निकालते हैं। महर्षि घेरण्ड, घेरण्ड संहिता 1/21 में कहते हैं— अर्थात् कौवे की चोंच के समान ओठों को करके उनके द्वारा वायु—पान करते हुए उदर को भर लें। उस पान की हुई वायु को आधे प्रहर (1) घंटे तक उदर में रोक कर परिचालित करते हुए अधोमार्ग से निकाल दें। यह परम गोपनीय बहिष्कृत धौति कहलाती है।

क्रियाविधि—

यह क्रिया सहज नहीं की जा सकती एक योग्य शिक्षक की देखरेख में करें अन्यथा परेशानियों हो सकती है। (1) ध्यान के कोई आसन में बैठ जाये

(2) दोनों हाथों को घुटने पर रखें।

(3) काकी मुद्रा (कौवे की चोंच के समान) में वायु का धीरे-धीरे पान करें।

(4) 1 घंटे वायु का परिचालन पेट पर होने दें। अन्त में अधोमार्ग से उसे बाहर निकाल दें।

लाभ—

(1) उदरगत विकार दूर होते हैं।

(2) शरीर हल्का, कान्तिमान हो जाता है।

(3) कुण्डलीनी शक्ति जागरण में लाभकारी है।

(4) प्रजनन संस्थान को बलिष्ठ बनाती हैं।

सावधानियाँ—

वही व्यक्ति इस अभ्यास को करे जिसे 1 घंटे श्वास रोकने का अभ्यास हो। इसे एक योगी ही कर सकता है। अतः इस अभ्यास में विशेष मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

14.3.2 दन्त धौति—

सामान्य रूप से आप दन्ते धौति का अर्थ दाँतों की सफाई के रूप में समझ रहे होंगे। लेकिन दन्त-धौति को महर्षि घेरण्ड ने शीर्ष प्रदेश की सम्पूर्ण स्वच्छता के रूप में प्रयुक्त है। इस धौति के निम्न प्रकार है।

(क) दन्त मूल धौतिः— दन्त मूल अर्थात् दाँतों की जड़ और धौति का अर्थ है धोना। अर्थात् इस अभ्यास में दाँतों की जड़ की स्वच्छता की जाती है। महर्षि घेरण्ड कहते हैं।

‘खादिरेण रसेनाथं शुद्धमुक्तिकया तथा
मार्जयेदन्तामूलं च यावत्किल्बिषमाहरेत्
दन्त मूलं पराधौतियोगिनां योग साधने
नित्यौ कुर्यात्प्रकभाते च दन्तसरक्षाच योगवित्

जब तक मैल न छूटे तब तक खादिर के रस अथवा विशुद्ध मिट्टी से दाँतों की जड़ों को मॉजना चाहिए। योगियों को यह साधन अपने दाँतों की रक्षा के लिए नित्या प्रातःकाल अवश्य करना चाहिए। योग को जानने वाले पुरुष इस दन्तमूल धौति को प्रमुख कर्म मानते हैं।

क्रियाविधि-

प्राचीन समय में दन्तमंजन चूर्ण बनाने की विधि आयुर्वेद में बताई गई है। दन्तमंजन चूर्ण के अलावा शुद्ध चिकनी मिट्टी (जिसे घर में लिपने में प्रयोग करते हैं) या खादिर (कथे) के रस को मिट्टी में मिलाकर तर्जनी अंगुली से दाँतों की जड़ों को साफ करते हैं। फिर शुद्ध पानी से कुल्ला कीजिए। यह क्रिया प्रातःकाल व सांय भोजन के बाद भी की जा सकती है।

लाभ-

नित्य इस अभ्यास को करने से दाँतों की सफाई तो होती ही है साथ ही साथ दाँतों में फँसा मल भोजन के टुकड़े बाहर निकल जाते हैं। मुँह में कहीं छाले पड़े हो तो खादिर का रस औषधि का काम भी करता है।

सावधानियाँ-

- (1) जिस भी चूर्ण (दन्त मंजन, खादिर, मिट्टी) का उपयोग कर रहे हो वह बारीक पीसा गया हो।
- (2) दाँतों में पीब, कीड़े या छेद हो तो आयुर्वेदिक औषधि चिकित्सा के बाद ही इस अभ्यास को करें।

विशेष:- दन्त मंजन चूर्ण बनाने की एक सस्ती व सरल प्रक्रिया है। बादाम के छिलकों को आग में जलाकर कोयला बना लें फिर उस कोयले का पाउडर बनाकर उसमें पीसी लोंग, सेंधा नमक, नीम के पत्तों का पाउडर मिला दें। इस चूर्ण का प्रयोग भी दाँतों के लिए लाभकारी है।

(ख) जिह्वाशोधन धौति:- जीभ के शोधन की यह प्रक्रिया जीभ की लम्बाई बढ़ाने तथा अनेकानेक रोगों में लाभकारी है।

महर्षि घेरण्ड कहते हैं

‘तर्जनीमध्य मानामा अंगगुलित्रययोगतः
 वेशयेप्रलमध्येय तु मार्जयेल्ल, म्बिकामूलम्
 शनैशनैः मार्जयित्वां कफदोषं निवारयेत्
 मार्जयेन्नरतनीतेन दोहयेच्च पुनः पुनः
 तदगं लोहयन्त्रे ण कर्षयित्वान शनैःशनैः
 नित्यं कुर्यात्प्रनयत्नेरुन खेः दयकेइस्तरुके
 एवं कृते च नित्यं सा लम्बिका दीर्घना ब्रजेत’

घेरण्ड संहिता 29/30/31

अर्थात् तर्जनी, मध्यमा और अनामिका, तीनों अंगुलियों को मिलाकर कंठ में डाल जिह्वा की जड़ को स्वच्छ करना चाहिए। धीरे-धीरे कोमलता से रगड़ने से कफ दोष का निवारण होता है। जब वह सफाई रगड़ना हो जाये तब जीभ में थोड़ा मक्खन लगा लें। पुनः दूध दोहने जैसी क्रिया करें। तदपश्चात् लोहे की चिपटी से जीभ को पकड़कर बाहर खींचें। अभ्यास को प्रतिदिन सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय, करने से जिह्वा की लम्बाई बढ़ जाती है।

क्रियाविधि- यह एक सहज प्रक्रिया है दोहन क्रिया में जीभ में मक्खन डाल लें। बाजार में प्लास्टिक या स्टील की जिह्वा निर्लेखनी मिलती है उससे भी जीभ की सफाई की जा सकती है।

लाभ -

- (1) इस क्रिया से जीभ की लम्बाई बढ़ती है जिससे भाषा की स्पष्टता रहती है।
- (2) जीभ के दोहन से गले व श्वास नली में एकत्र श्लेष्मा निकल जाता है।
- (3) इससे व्याधि, बुढ़ापा व मृत्यु को दूर भगाया जा सकता है।
- (4) खेचरी मुद्रा की सिद्धि में लाभकारी है।

सावधानियाँ-

- (1) जीभ में छाले हो तो इस अभ्यास को नहीं करें।
- (2) अपनी अंगुलियों को मुंह के ज्यादा अन्दर ना डालें।
- (3) नाखुन अवश्य कटे हो अन्यथा मैल तो जायेगा ही स्वर यंत्र या मुंह में चोट लग सकती है।
- (ग) कर्णरन्ध्र धौति:- चूंकि इससे कान के छिद्रों की सफाई की जाती है इसलिए इसे कर्णरन्ध्र धौति कहते हैं। महर्षि घेरण्ड कहते हैं।

तर्जन्यणनामिका योगान्मारजयेत्कङ्कणस्थियोः

नित्याभ्यास योगेन नादान्त्र प्रकाशयेत्

घेरण्ड संहिता 1/32

अर्थात् तर्जनी और अनामिका को मिलाकर योगी जन दोनों कानों के छिद्रों की सफाई करते हैं। इस विधि के नित्य अभ्यास से नाद की अनुभूति होती है।

क्रियाविधि-

- (1) तर्जनी या अनामिका अंगुली को गीला कर लें। तदपश्चात् कान के अन्दर डालकर उसे घुमायें अंगुली को गीला करने के लिए सरसों के तेल में लहसुन डालकर उसका उपयोग भी कर सकते हैं।

लाभ- कानों की सफाई होती है दिव्य नाद की अनुभूति होती है इसलिए इसके अध्यात्मिक लाभ भी हैं।

सावधानियाँ

- (1) माचिस की तिल्ली से इस क्रिया को ना करें।
- (2) अंगुलियों के नाखुन अवश्य कटें होने चाहिए।

(घ) कलालरन्ध्र धौतिः— कपालरन्ध्र अर्थात् नवजात बच्चे के सिर पर वह स्थान जो पिचकता महसूस होता है उस स्थान की इससे सफाई होती है। अतः इसे कपालरन्ध्र धौति कहते हैं।

महर्षि घेरण्ड कहते हैं।

वृद्धागुष्ठे न दक्षेण मार्जयेद्दालस्थु कम
 एवमभ्या ससयोगेन कफदोष निवारयेत्
 नाडी निर्मलतां याति दिव्यदृष्टिरु प्रजायते
 निद्रान्तोभिजनान्ते च दिवान्तेय च दिने—दिने

घेरण्ड संहिता 1/33,34

अर्थात् अपने दाहिने हाथ की अंगुलियों को समेटकर कप की आकृति बनानी चाहिए और उस कप की आकृति वाले हाथ में पानी भरकर अपने कपालरन्ध्र में थपकी देनी चाहिए। इस प्रकार के अभ्यास से कफ दोष से मुक्ति मिलती है। खोपड़ी के ऊपर जो नाडियाँ हैं वे निर्मल बनती हैं और दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है। निद्रा की समाप्ति पर भोजन करने के बाद और निद्रा के पहले तथा दिन की समाप्ति पर अपनी खोपड़ी को थपकी देनी चाहिए।

क्रियाविधि

इस धौति की विधि स्पष्ट है दाहिने हाथ का कटोरा बनाकर उसमें पानी भरे तथा शीर्ष प्रदेश (ब्रह्मरन्ध्र) पर धीरे-2 थपकी दें।

लाभ

- (1) मस्तिष्क में शीतलता प्रदान होती है मोतियाबिन्द में लाभकारी है।
- (2) दूर व निकट दृष्टि दोष दूर होते हैं।
- (3) कफ दोषों (सर्दी, खांसी) में लाभकारी है।
- (4) उच्चरक्त चाप में इस धौति से लाभ मिलता है।
- (5) गर्मियों में इस अभ्यास को करने से शीतलता मिलती है।

सावधानियाँ

इस अभ्यास में विशेष सावधानी की जरूरत नहीं है फिर भी जाड़ों में इसका प्रयास वर्जित है। छोटे बच्चों को इस अभ्यास कराने के लिए योग शिक्षक से सलाह अवश्य लें।

14.3.3 हृदधौति –

हृद का अर्थ है हृदय और धौति का अर्थ है धोना इस धौति से हृदय प्रदेश, अन्न नलिका, आमाशय की सफाई होती है इसलिए इसे हृदधौति कहते हैं इसके निम्न तीन भेद हैं।

(क) दण्ड धौति:- दण्ड अर्थात् ठंडा और धौति अर्थात् धौना इस धौति में हल्दी केले के मृदु भाग के टंडे से अन्तः प्रदेश की सफाई की जाती है। महर्षि घेरण्ड कहते हैं:-

रम्भा दण्ड हरिदण्डं वेबदण्डंश्च तथैव च
हन्मडध्ये चालयित्वाड तु पुनः प्रतयाहरेच्छ नैः
कफं पित्तं तथा क्लेमदं रेचयेदूर्ध्ववर्तुना
दण्डतधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद् ध्वम

घेरण्ड संहिता 1/36 दृ0 37

अर्थात् केले के मृदु भाग के डण्डे हल्दी के डण्डे या बेंत को हृदय के मध्य में बार-बार घुमा कर धीरे-2 निकालना चाहिए। फिर कफ पित्त, क्लेद का मुख द्वार से रेचन करना चाहिए। यह कर्म हृदय रोग का भी निश्चित रूप से नाश कर देता है।

क्रियाविधि- परम्परागत रूप से दण्ड धौति के लिए केले, बेंत या हल्दी के मृदु भाग को लेते हैं पर आधुनिक समय में रबर की दण्ड भी बाजार में उपलब्ध रहती है। दण्ड धौति को प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह उबाल लें।

- (1) सर्वप्रथम 4-5 गिलास स्वच्छ जल (नमकीन) पी लें।
- (2) शनैः शनैः रबर, हल्दी, बेंत की दण्ड (जो उपलब्ध हो) मुंह खोलकर आमाशय तक डालें।
- (3) फिर थोड़ा आगे झुकें पूरा जल दण्ड के अगले छोर से आने लगेगा।
- (4) तदुपरान्त धीरे-2 दण्ड को बाहर निकाले तथा इसके साथ कफ, पित्त, श्लेष्मा, जो भी निकले उसे बाहर थूक दें।

लाभ

- (1) कफ, पित्त, क्लेद का निष्काषण इस क्रिया से होता है।
- (2) अम्ल पित्त, दवा में यह अभ्यास लाभकारी है।
- (3) फेफड़े की क्षमता बढ़ती है हृदय रोग में भी लाभकारी है।

सावधानियाँ

(1) यहाँ पर दण्ड धौति का वर्णन मात्र एक विधि मानकर किया है हर व्यक्ति इस अभ्यास के योग्य नहीं है योग शिक्षक की देखरेख में ही इस अभ्यास को करें।

(ख) वमन धौति :- वमन का अर्थ उल्टी करने से है।

महर्षि घेरण्ड ने कहा है

भोजनान्ते पिबेद्रारि चाकण्ठं व पुरितं सुधीः
उर्ध्वा दृष्टि क्षण कृत्वा तज्जतलं वमयेत्पुनः
नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तं निवारयेत्

घेरण्ड संहिता 38/39

अर्थात् ज्ञानी साधक को भोजन के उपरान्त कण्ठ पर्यन्त जल पीना और फिर क्षण भर बाद ऊपर की ओर देखते हुए उसे वमन द्वारा निकाल देना चाहिए। इस प्रयोग से कफ व पित्त का निवारण होता है।

नोट:- उपरोक्त महर्षि घेरण्ड का विवेचन व्याघ्र क्रिया को अंगित करता है। वमन वस्तुतः दो प्रकार का होता है एक खाली पेट जिसे कुंजल नाम दिया है और दूसरा भोजन के उपरान्त किये जाने वाली व्याघ्र क्रिया।

क्रियाविधि-

- (1) सर्वप्रथम बैठकर बिना रुके हुए गुनगुना नमकीन जल इच्छानुसार 5 / 7 / 10 गिलास तक दिये।
- (2) फिर उठकर तर्जनी, मध्यमा व अनामिका ऊंगली को गले तक डालकर वमन करें।
- (3) अंगुलियों को पुनः मुँह के भीतर ले जाये यह क्रिया तब तक दोहराये जब तक पेट खाली ना हो।

लाभ-

- (1) आभाशय को स्वच्छ कर विकार रहित बनाती है।
- (2) कफ, पित्त, क्लेद को बाहर निकालती है।
- (3) अत्रीर्ण, अम्लपित्त में लाभकारी है।
- (4) दमा के रोगी को कफ के विरेचन हो जाने के कारण लाभ मिलता है।

सावधानियाँ-

- (1) पानी गुनगुना नमक युक्त व स्वच्छ हो।
- (2) हाथ के नाखून पूरे कटे होने चाहिए।
- (3) हार्निया व कमर दर्द में इस अभ्यास को ना करें।

(ग) वासन धौति (वस्त्र धौति) :- वासन अर्थात् वस्त्र (कपड़े) की पट्टी से इससे पाचन संस्थान की सफाई की जाती है। इसलिए इसे वस्त्र धौति कहते हैं। महर्षि घेरण्ड कहते हैं

चतुरांगुल विस्ता रं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्गसेत्
पुनरुप्राकहरेदेतत्प्रोतच्यते धौतिकर्मकम्
गुल्म ज्व रालीहकुष्ठमकफपित्तं विनश्यति
आरोग्यं बलपुष्टिश्चक भवेत्तस्यो दिने दिने

घेरण्ड संहिता 1/40/41

अर्थात् महीन वस्त्र की चार अंगुल चौड़ी पट्टी लेकर धीरे-धीरे निगलना चाहिए। फिर इसे धीरे-2 ही बाहर निकालें। इस वस्त्र धौति के अभ्यास से गुल्म, ज्वर, कुष्ठ एवं कफ-पित्त के विकारों का शमन होता है। यह धौति आरोग्य, बल और पुष्टि की दिनों-दिन वृद्धि करती है।

क्रियाविधि

- (1) चार अंगुल चौड़ा व 3-4 मीटर लम्बा सूती कपड़ा लीजिए।
- (2) उसे एक पात्र (लोहे गिलास, कटोरी) में रखकर भिगा दें।
- (3) एक छोर को पकड़कर धीरे-धीरे उसे निगले बीच-बीच में स्वच्छ जल अवश्य पियें।
- (4) जब अन्तिम छोर बचा हो फिर धीरे-धीरे उसे बाहर निकाल दें।

लाभ-

- (1) कफ, क्लेद का निष्कासन होता है।
- (2) दमा के रोगी के लिए यह क्रिया रामवाण है।
- (3) वायु विकार, बुखार, चर्मरोग में लाभकारी है।
- (4) उदरगत व्याधियों दूर होती हैं। जठराग्नि बढ़ती है।

सावधानियाँ

- (1) यह कठिन क्रिया है इसे योग्य योग शिक्षक के मार्गदर्शन में करे।
- (2) अगर वस्त्र धौति करते हुए 5 मिनट हो जाये तो फिर उसे बाहर निकाल दें अन्यथा व आँतों की ओर जा सकती है। (3) कपड़े को निगलते समय जीभ में सटाकर रखें।
- (4) कोशिश यह करें कि निगलते समय कपड़े में लार अवश्य मिले जिससे निगलने में सुविधा होगी।

14.3.4 मूलशोधन-

मूल क्षेत्र अर्थात् शरीर का मूल भाग (गुदा) की इस अभ्यास से सफाई होती है
महर्षि घेरण्ड कहते हैं

अपानक्रूरता तावद्यावन्मूषलं न शोधयेत्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मूलशोधनमाचरेत्
पीतमूलस्यस दण्डेन मध्येमाङ्गुलिनाडपि वा
थलेन क्षालयेदगुच्छ वारिणा च पुनः पुनः
तारयेत्कोलष्ठगकाठिन्यरमामाजीर्ण निवारयेत्
कारणं कान्तिपुष्टवयोश्चय दीपनं बहिमण्डनलम्

अर्थात् मूल शोधन न होने तक अपान वायु की क्रूरता नष्ट नहीं हो पाती। इसलिए प्रयत्नपूर्वक मूल शोधन कर्म करना चाहिए। हल्दी की जड़ अथवा मध्यम अंगुली के द्वारा जलयोग से पुनः पुनः प्रक्षालन आवश्यक है। इस कर्म से कब्ज (मल की शुष्कलता मलावरोध) एवं अजीर्ण आदि का निवारण होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

क्रियाविधि:- हल्दी की नरम जड़ से या अनामिका अंगुली में घी लगाकर गुदा क्षेत्र में डालें हल्दी की जड़ रोगाणुरोधक होने के कारण उपयुक्त है दो-चार बार इस क्रिया को दोहरायें।

लाभ-

- (1) उत्सर्जन तन्त्र को बलिष्ठ करता है इस क्रिया से नाड़ी और कोशिकाओं की ओर रक्त संचार तेज होता है।
- (2) कब्ज में यह अभ्यास लाभकारी है।
- (3) अपान वायु का संतुलन करती है।
- (4) इस धौति से पाचन संस्थान के रोगों में भी लाभ मिलता है।

सावधानियाँ-

- (1) अंगुली के नाखून अच्छी तरह काट लें।
- (2) बवासीर के रोगियों को अंगुली मूल प्रदेश में डालते समय बेहद सावधानी बरतनी चाहिए।
- (3) योग्य गुरु की सलाह में ही इस अभ्यास को करें।

विशेष:- इस धौति को गणेश क्रिया या जल मूल शोधन के नाम से भी जानते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. एक शब्द में उत्तर दीजिए
 - (क) धौति के कितने प्रकार हैं।
 - (ख) घेरण्ड संहिता के रचयिता कौन हैं।
 - (ग) वारि सार धौति को किस नाम से जाना जाता है।
 - (घ) वमन धौति के कितने प्रकार बताये हैं।

14.4 सारांश

हठयोग की क्रियाओं में धौति की क्रिया सबसे महत्वपूर्ण है। धौति क्रिया से अन्तल प्रदेश विशेष रूप में पाचन संस्थान के भीतरी अंगों की पूर्ण रूप से सफाई होती है। इस क्रिया के शारीरिक लाभ तो है ही परन्तु कहीं न कहीं महर्षि घेरण्ड ने धौति क्रिया के अध्यात्मिक लाभ भी बताये हैं। वस्तुति: हठयोग की क्रियायें राजयोग की प्राप्ति के लिए ही की जाती हैं। देखने में भले ही यह क्रियायें सरल व सहज हो पर वास्तव में इन्हें एक कुशल मार्गदर्शन में ही करना उचित होगा।

14.5 शब्दावली

- (1) आर्ष-प्राचीन ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त शब्द
- (2) हठ-ह अर्थात् अकार (सूर्य), ठ (ठकार) चन्द्र नाडी
- (3) घेरण्ड संहिता-हठयोग का एक प्राचीनतम ग्रन्थ
- (4) घट- घट अर्थात् घड़ा जिसकी तुलना शरीर से की
- (5) धौति- धौना, सफाई करना
- (6) तात- हवा, वायु
- (7) वारि - जल
- (8) बहिष्कृत- निकाल देना
- (9) सार- तत्व
- (10) परिचालन-घुमाना, गोलाकार घुमाना
- (11) अधोमार्ग- गुदा भाग
- (12) अपशिष्ट- त्याज्य पदार्थ, जैसे मल
- (13) देव देह- देवताओं का शरीर
- (14) हार्निया- आँतों की एक बीमारी
- (15) जठराग्नि- जठर अर्थात् पेट, पेट की अग्नि
- (16) कुण्डिलीनी-3 फेरे लगाई मूल प्रदेश में स्थित एक
- (17) खादिर- खैर जिससे पान का कत्था लगता है।
- (18) खेचरी - एक मुद्रा, जिसके अध्यात्मिक लाभ हैं।
- (19) जिह्वा निर्लेखनी- जीभ को साफ करने वाला एक यन्त्र
- (20) रन्ध्र- छेद

14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) चार (ख) महर्षि (ग) शंख प्रक्षालन (घ) दो

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सरस्वती निरंजनानन्द स्वामी – घेरण्ड संहिता (1997) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर, बिहार

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. घेरण्ड संहिता के अनुसार धौति क्रिया का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए
2. निम्न पर टिप्पणी लिखिए।
(क) शंख प्रक्षालन (ख) कपालरन्ध्र धौति
(ग) कुंजल क्रिया (घ) गणेश क्रिया

इकाई- 15 घेरण्ड संहिता में वर्णित वस्ति, नेति, नौलि की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

इकाई की संरचना

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3 वस्ति
- 15.4 नेति
 - 15.4.1 जल नेति
 - 15.4.2 रबर नेति
 - 15.4.3 सूत्र नेति
- 15.5 नौलि
 - 15.5.1 मध्यम नौलि
 - 15.5.2 वाम नौलि
 - 15.5.3 दक्षिण नौलि
 - 15.5.4 भ्रमर नौलि
- 15.6 सार संक्षेप
- 15.7 पारिभाषिक शब्दावली
- 15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 15.10 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि के प्रश्नों के उत्तर को बड़ी सहजता व सरलता के साथ दिया और इस प्रश्न-उत्तर की श्रंखला घेरण्ड संहिता नामक पुस्तक बन गई। एक जिज्ञासा जिज्ञासु पाठकों की हमेशा रहती है कि षट्कर्मों की श्रंखला में नेति, वस्ति व नौलि कैसे की जाती है इसके क्या लाभ हैं और क्या-क्या सावधानियाँ इनको करने में बरतनी चाहिए। षट्कर्म हठयोग की माला के पिरोये मोती हैं प्रस्तुत इकाई में वस्ति, नेति, नौलि रूपी मनको का अध्ययन में वस्ति, नेति, नौलि रूपी मनको का अध्ययन करेंगे और जिज्ञासु पाठक अपने प्रश्नों का उत्तर भी आगामी पृष्ठों में जान सकेंगे।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

- वस्ति के विविध विधियों, लाभ व सावधानियों का अध्ययन करेंगे।
- नेति के प्रकारों, लाभ व सावधानियों को जान सकेंगे।
- नौलि की विधियों, लाभों व सावधानियों का अध्ययन करेंगे।

15.3 वस्ति

वस्ति नाम बड़ी आँत के लिए प्रयुक्त होता है। इस अभ्यास में गुदा द्वारा वायु अथवा जल को खींचा जाता है जिससे बड़ी आँत की सफाई होती है। चूँकि बड़ी आँत शरीर में अवशिष्ट पदार्थों का निष्कासन शरीर से बाहर करती है।

महर्षि घेरण्ड वस्ति के भेदों को बताते हुए कहते हैं—

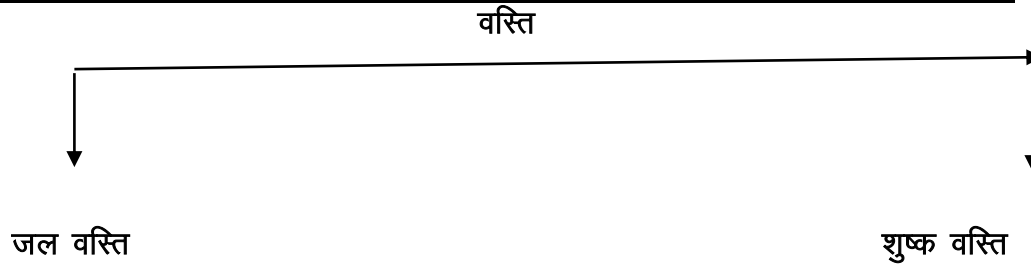
जल वस्ति शुष्कवस्तिर्वस्ती चद्विविधौस्मृतौ
जल वस्ति जल कुर्वाच्छुषकवस्तिं सदा क्षितौ

घेरण्ड संहिता 1/45

अर्थात् वस्ति कर्म दो प्रकार का होता है।

(1) जल वस्ति (2) शुष्क वस्ति

जल वस्ति का अभ्यास जल में किया जाता है शुष्क वस्ति का अभ्यास भूमि पर, सूखे स्थल पर किया जाता है।



15.3.1 जल वस्ति— जल से बड़ी आँतो की सफाई की यह क्रिया जल वस्ति के नाम से जानी जाती है।

महर्षि घेरण्ड ने जल वस्ति की विधि को इस प्रकार परिभाषित किया है।

नाभिमग्न जले पायुन्यजस्त नालोत्कायसन

आकुन्चनं प्रसारं च जल वस्तिं समाचरेत्

घेरण्ड संहिता 1 / 46

अर्थात् जल में नाभिपर्यन्त बैठकर उत्कट आसन लगाये और गुह्य देश का आकुन्चन प्रसारण करे यह जल वस्ति है।

क्रियाविधि—

1. सरोवर, नदी में उत्कट आसन लगाकर खड़े हो जाये।
2. पैरो को उत्कट आसन में इतना मोड़े कि जल नाभि तक आ जाये।
3. दोनों हाथों को जंघाओं पर रख लीजिए।
4. गुदा द्वार का संकुचन व प्रसारण कीजिए।

नोट— जल वस्ति की वह प्राचीनतम प्रक्रिया के लाभ एनिमा द्वारा भी लिए जा सकते हैं।

लाभ —

1. मधुमेह के उपचार में सहायक है।
2. आँतों के अनेकानेक रोगों विशेष रूप से कब्ज व बवासीर में लाभकारी है।
3. शरीर से दूषित वायु का निष्कासन कर शरीर की शुद्धि करती है।
4. तंत्रिका तंत्र पर इसका प्रभाव पड़ता है।
5. त्वचा सम्बन्धित रोगों में भी लाभकारी है।

सावधानियों— हठयोग की प्राचीनतम यह क्रिया गुरु के मार्गदर्शन व निर्देश के अनुसार की जानी चाहिए। चूँकि वर्तमान में सरोवर तालाब का जल अशुद्ध देखा गया है। अतः योग गुरु के निर्देशानुसार इस क्रिया की जगह 'एनिमा' घर पर ही लिया जा सकता है।

15.3.2 स्थल वस्ति— चूँकि यह क्रिया स्थल अर्थात् जमीन पर की जाती है अतः यह क्रिया स्थल अर्थात् जमीन पर की जाती है अतः यह क्रिया स्थल वस्ति के नाम से जानी जाती है। महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि को स्थल वस्ति की क्रियाविधि व लाभ को समझाते हुए कहा —

पश्चिमोत्तान्तो वस्तिं चालयित्वा शनैः।

अश्विनीमुद्रया पायुमाकुंचयेत् सारयेत्

ववमभ्यासयोगेन कोष्ठरदोषो न विद्यते

विवद्वेयेज्जवठराग्निमामवातं विनाशयेत्

घे०सं० 1/48,49

अर्थात् — अश्विनी मुद्रा के द्वारा गुदा का आकुंचन एवं प्रसारण करना चाहिए। पश्चिमोत्तान आसन में बैठकर नीचे के भाग में वस्ति का परिचालन करें। नीचे के भाग में वस्ति का इसके साधन से कोष्ठ के दोष एवं आमवात आदि रोगों का शमन और जठराग्नि का वर्धन होता है।

क्रियाविधि—

1. सर्वप्रथम दण्डासन में बैठ जाये।
2. दोनों हाथों से दोनों पैरों की अंगुलियों को पकड़ ले।
3. गुद्रा द्वार का आकुंचन एवं प्रसारण कीजिए।
4. श्वास लेते समय गुद्रा द्वार का आकुंचन तथा श्वास छोड़ते समय गुद्रा द्वार का प्रसारण कीजिए।

लाभ—

1. बड़ी आंत की स्वच्छता की यह सर्वोत्तम विधि है।
2. इस अभ्यास को नियमित करने से कोष्ठ दोष से मुक्ति मिलती है।
3. भूख बढ़ाने में यह क्रिया सहायक है।
4. वायु विकार, अजीर्ण कब्ज, पित्त व कफ दोषों में लाभकारी है।

सावधानियों—

1. उच्च रक्त चाप व हार्निया में इस अभ्यास को न करें।
2. पाचन सम्बन्धी कोई गंभीर रोग हो तो वो व्यक्ति भी इस अभ्यास को न करे।
3. योग गुरु की सलाह इस अभ्यास को करना चाहिए।

4. इस अभ्यास को करने से पहले जल वस्ति का अभ्यास कर लें।

अभ्यास प्रश्न

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) वस्ति का सम्बन्ध है—

(अ) बड़ी आंत से (ब) छोटी आंत से

(स) यकृत से (द) आमाशय से

(ख) महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता के किस अध्याय में वस्ति का वर्णन किया है।

(अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (द) चतुर्थ

15.4 नेति

नेति षट्कर्मा की तृतीय शुद्धिकरण की प्रक्रिया है। नेति क्रिया को आधुनिक समय में कान, नाक व गले से सम्बद्ध किया है। नेति क्रिया के माध्यम से मुख्य रूप से उपरोक्त तीन अंगों (नाक, कान, गले) की सफाई होती है। शास्त्रीय विवेचन करे तो हठयोग के महत्वपूर्ण ग्रन्थों हठ-प्रदीपिका व घेरण्ड संहिता में नेति की प्रक्रिया में सिर्फ सूत्र नेति का वर्णन मिलता है। परन्तु वर्तमान में नेति क्रिया अनेको रूपों में प्रयोग की जाती है। जैसे जल नेति, दुग्ध नेति, घृत नेति, मूत्र नेति, रबर नेति, सूत्र नेति इत्यादि। महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता में नेति की क्रिया को इस प्रकार परिभाषित किया है।

वितस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत्

मुखानिर्गभयेत्श्चोसत प्रोच्यते नेतिकर्मकम्

साधनानेतिकार्यस्य खेचरीसिद्धिमाप्नुयात्

कफदोषाः विनश्यन्ति दिव्दृष्टिरूपं प्राप्नुयते

घे०सं० 1/50,51

अर्थात्,

वालिशतभर (आधा हाथ) लम्बा डोरा लेकर नासिका में घुसायें और मुख से बाहर निकाल दें। इसे नेति कर्म कहते हैं। इसका साधन करने से खेचरी की सिद्धि कफ-दोषों की निवृत्ति और दिव्य दृष्टि की उपलब्धि होती है।

भलई उपरोक्त घेरण्ड संहिता के श्लोक मात्र सूत्र नेति की व्याख्या की है पर आपको अध्ययन के लिए नेति की वर्तमान में प्रचलित विविध विधियों की व्याख्या की जा रही है।

15.4.1 जल नेति— जल द्वारा इसमें नासिका मार्ग का शुद्धिकरण किया जाता है।

क्रियाविधि—

- (1) नेति पोट (टोटी वाला लोटा) ले लीजिए।
- (2) उकड़ूं बैठकर या बड़े होकर सिर को आगे झुकाये।
- (3) स्वच्छ जल शरीर के तापमान को बराबर जिसमें नमक (स्वादानुसार) डला हो उसे नेति पोट में भर लीजिए।
- (4) जो स्वर चल रहा हो उसमें नेति पोट के टोटी को घुसाये।
- (5) मुँह खोल जीजिए तथा गर्दन को थोड़ा झुकायें।
- (6) जल दूसरे नाक से स्वतः आने लगेगा।
- (7) 20–25 सेकण्ड तक जब पानी पूरा खत्म हो जाये नेति पोट की नाक से निकाल लेता या पुनः दूसरी नाक से इस क्रिया को दोहराये।

विशेष —

- (1) नेति पोट वर्तमान में प्लास्टिक व तॉबे, पीतल का बना बाजार में उपलब्ध रहता है।
- (2) जल नेति में जल का तथा अन्य नेति में घृत, मूत्र (स्वःमूत्र—मध्य भाग का) प्रयोग गुरु के निर्देशानुसार किया जा सकता है।

15.4.2 रबर नेति— रबर नेति अर्थात् कैथेडर द्वारा नासिका मार्ग की सफाई इस प्रक्रिया में की जाती है।

क्रियाविधि—

- (1) लम्बी , पतली रबर की ट्यूब (कैथेडर) को (जो अच्छी तरह उबली हो) ले लीजिए।
- (2) खड़े होकर बिना तनाव लिये जो स्वर चल रहा हो उस ट्यूब को धीरे-धीरे नासिका मार्ग में डाले।
- (3) थोड़ी देर बाद रबर नेति (कैथेडर) का दूसरा सिरा गले तक पहुँच जायेगा।
- (4) अंगूठा व तर्जनी अंगुली मुँह में डालकर गले से उसके दूसरे सिरे को खींच लीजिए।
- (5) थोड़ी देर दोनों छोरों को पकड़कर उसमें आगे-पीछे घर्षण करें।
- (6) अन्त में धीरे-धीरे रबर नेति को बाहर निकाल दीजिए।
- (7) पुनः इस प्रक्रिया को दूसरे नासाछिद्र में डालकर दोहराइये।

15.4.3 सूत्र नेति — 7.8 इंच लम्बे 8–10 महीन सूती धागों में मोम डालकर बँट लीजिए। एक हिस्से को लगभग 6 इंच मोम में डालकर कड़ा होने दे। इस प्रकार सूत्र नेति बनाकर इस प्रक्रिया को किया जाता है।

क्रियाविधि:

1. एक सूत्र नेति लेकर सावधानी पूर्वक जो स्वर चल रहा हो उसमें सूत्र नेति धीरे-धीरे डालिए।
2. थोड़ी देर बाद सूत्र नेति का दूसरा सिरा गले तक पहुँच जायेगा।
3. अंगूठा व तर्जनी अंगुली को मुँह में डालकर गले से उसके दूसरे सिरे को खींच लीजिए।
4. थोड़ी देर सूत्र नेति के दोनों छोरों को पकड़कर घर्षण कीजिए।
5. अन्त में मुँह से सूत्र नेति निकाल दीजिए पुनः दूसरे नाक से इस प्रक्रिया को दोहराये।

नोट – वर्तमान में बाजार में सूत्र नेति बनाई हुए उपलब्ध रहती है। उसे प्रयोग हेतु खरीदा जा सकता है।

सभी प्रकार की नेति की लाभ व सावधानियाँ इस प्रकार है।

लाभ –

1. नेति क्रिया का साइनस ग्रन्थि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
2. नाक से निकलने वाले श्लेष्मा का नियंत्रण करती है।
3. श्वसन संस्थान के रोगों, साइनोसाइटिस, ब्रोकाइटिस, अस्थमा में लाभकारी है।
4. दूर व निकट दृष्टि में अतयन्त लाभकारी है।
5. आँख, नाक व कानों के रोगों में लाभप्रद है।
6. नासिका मार्ग में श्लेष्मा झिल्ली की मालिश होने से उसकी क्रियाशीलता बढ़ती है तथा रक्त का प्रभाव तेज होता है।
7. नेति क्रिया से तनाव, चिन्ता, अवसाद के रोगियों को भी लाभ पहुँचता है।
8. मस्तिष्क में गर्मी, उत्तेजल, मिर्गी की बीमारी में भी इसका सार्थक प्रभाव पड़ता है।

सावधानियाँ–

1. नासिका मार्ग एक नाजुक अंग है, रबर या सूत्र नाक में नहीं जाये तो जबरदस्ती ना करे।
2. रबर नेति या सूत्र नेति करने से पहले यह अवश्य साफ होनी चाहिए।
3. नेति करते समय हाथ स्वच्छ रहे तथा नाखून कटे होने चाहिए।
4. एक कुशल मार्गदर्शन में नेति का अभ्यास करें।

15.5 नौलि

नौलि (लौलिकी) षट्कर्मों में शुद्धिकरण की चौथी प्रक्रिया है। पिछली इकाई में धौति के प्रकारों में आपने अग्निसार क्रिया का अध्ययन किया। नौलि क्रिया अग्निसार का ही एक प्रकार है या यूँ कहे कि नौलि क्रिया अग्निसार अन्तः धौति की उच्च अभ्यास है। जठराग्नि को बढ़ाने वाली इस क्रिया में उदरगत मॉसपेशियों की मालिश होती है या पेट की समस्त मांसपेशियों की क्रियाशीलता त्वरित गति से बढ़ती है। महर्षि घेरण्ड ने नौलि की क्रियाविधि व लाभों को समझाते हुए कहा है।

अमन्दहवेगेन तुन्द्रि, भामयेदुभपार्श्वरयो
सर्वरोगान्निहन्तीनह देहानलविवर्द्धनम्

घे0सं0 1/52

अर्थात् उदर को दोनों पार्श्वों में अत्यतन्त वेगपूर्वक घुमाना चाहिए। यह लौलिकी, अर्थात् जठराग्नि का उद्धीपक है।

भलई महर्षि घेरण्ड ने नौलि क्रिया की विधि में उदर को दोनों पार्श्वों में घुमाने की बात कही है पर अध्ययन की सुविधा दृष्टि ने नौलि के निम्न प्रकार की विधियों को समझना उचित है।

15.5.1 सामान्य या मध्यम नौलि – इस नौलि में सामान्य रूप से पेट की मॉसपेशियों को समेट कर कुछ देर सिकोड कर रखते हैं।

क्रियाविधि

1. दोनों पैरों में कन्धे की दूरी के बराबर जगह बनाये।
2. दोनों हाथों को घुटने पर रखकर थोड़ा झुक जाये।
3. पूरा श्वास का रेचक कीजिए।
4. पेट को अन्दर की ओर खींच लीजिए।
5. दोनों हाथों से घुटने पर हल्का दबाव डाले उदर की मांसपेशियाँ बीच में स्वतः हो जायेगी।
6. यह मध्यम या सामान्य नौलि की एक आवृत्ति है।

15.5.2 वाम नौलि – वाम अर्थात् बायीं और उदरगत मॉसपेशियों के समूह को ले जाना वाम नौलि कहलाती है।

क्रियाविधि –

1. दोनों पैरों में कन्धों की दूरी के बराबर जगह बनाये।
2. दोनों हाथों को घुटनों या जांघों पर रखकर थोड़ा झुक जाइये।
3. फिर उपरोक्त मध्यम नौलि कीजिए।
4. उदर की दाहिनी मॉसपेशियों को ढीला कर दीजिए।
5. तदपश्चात् उदर की बायीं ओर की मांसपेशियों को संकुचित करें।
6. उदरगत मॉसपेशियों का पिण्डी बायीं ओर स्वतः आ जायेगा।
7. यह वाम नौलि की एक आवृत्ति है।

15.5.3 दक्षिण नौलि – दक्षिण अर्थात् दाहिने ओर उदरगत मांसपेशियों के समूह को ले जाना दक्षिण नौलि कहलाता है।

क्रियाविधि–

1. दोनों पैरों में कन्धों की दूरी के बराबर जगह बनाइये।
2. दोनों हाथों की घुटनों पर या जंघाओं पर रख लीजिए।
3. सामान्य नौलि की अवस्थाओं में आये।

4. उदरगत बाये भाग की मांसपेशियों की अन्दर की ओर संकुचित करें।
5. स्वगत मांसपेशियों का पिण्डी संकुचित होकर पेट के दाहिने ओर आ जायेगा।
6. यह दक्षिण नौलि की एक आवृत्ति है।

15.5.4 भ्रमर नौलि — जब उपरोक्त तीनों नौलियों सामान्य, वाम व दक्षिण को एक साथ जोड़ देते हैं तो वह भ्रमर नौलि कहलाती है। इस नौलि की प्रक्रिया में गुरु के निर्देशानुसार 5—6 बार घड़ी की सुई की दिशा में व 5—6 बार उसकी विपरीत दिशा में उदरगत मांसपेशियों को घुमाते हैं। इसलिए इसे भ्रमर नौलि के नाम से जाना जाता है।

क्रियाविधि

1. सर्वप्रथम सामान्य (मध्यम) नौलि कीजिए।
2. तदपश्चात् वाम नौलि कीजिए।
3. फिर दक्षिण नौलि कीजिए।
4. जब वेगपूर्वक उपरोक्त क्रिया करेंगे तो भ्रमर नौलि स्वतः ही होने लगेगी।

लाभ —

1. नौलि क्रिया से कुण्डलीनी शक्ति जागृत होती है।
2. उदरगत मांसपेशियों की क्रियाशीलता बढ़ती है तथा वहाँ रक्त का संचार तीव्र होता है।
3. मणिपुर चक्र की जागृति होती है।
4. तन्त्रिका तन्त्र के साथ-साथ शिराओं पर इस नौलि क्रिया का प्रभाव पड़ता है।
5. रक्त परिसंचरण संस्थान पर इसका सार्थक प्रभाव पड़ता है।
6. भूख बढ़ती है जठराग्नि बढ़ती है।
7. अग्नाशय पर इसका सार्थक प्रभाव पड़ता है इसलिए मधुमेह में भी लाभकारी है।

सावधानियाँ—

1. नौलि का अभ्यास अगर पेट में दर्द हो तो न करें।
2. हार्निया, पथरी में यह अभ्यास वर्जित है।
3. उच्च रक्त चाप, पेटिक अल्सर, एसिडिटी के रोगी इस अभ्यास को नहीं करें।
4. गर्भवती महिलाये इस अभ्यास को बिल्कुल न करें।
5. वस्तुतः यौगिक षट्कर्म गुरु के निर्देश में ही किये जाते हैं। इस बात का विशेष ध्यान रखें।
6. भोजन के बाद इस अभ्यास को नहीं करें।
7. नौलि क्रिया से पहले उड्ड्यान बन्ध और अग्निसार का अभ्यास कर लीजिए।

अभ्यास प्रश्न

2. निम्न प्रश्नों का एक शब्द में उत्तर दीजिए—

(क) नौलि के कितने भेद बताये गये हैं।

(ख) नेति को षटकर्मों में किस स्थान पर रखा है।

15.6 सारांश

षटकर्मों में वस्ति, नेति व नौलि की प्रक्रिया के शारीरिक लाभ के साथ-साथ आध्यात्मिक लाभ भी है। इस इकाई में अपने षटकर्मों के तीन महत्वपूर्ण अभ्यासों (वस्ति, नेति व नौलि) का अध्ययन किया वस्ति का सम्बन्ध बड़ी आँत की सफाई से, नेति का सम्बन्ध नाक, कान व गले की स्वच्छता से तथा नौलि का सम्बन्ध उदरगत मांसपेशियों की क्रियाशीलता को बढ़ाने से था। उक्त तीन अभ्यास भलाई शारीरिक स्वास्थ्य लाभ को दृष्टित करते हैं परन्तु इन अभ्यासों के आध्यात्मिक लाभ भी है। मूलाधार में सुप्त पड़ी कुण्डलीनी शक्ति जो शक्ति के प्रतीक रूप में हैं उसकी जागृति षटकर्मों के अभ्यास में निहित है और इसका जागरण ही हठयोग का परम लक्ष्य है।

15.7 पारिभाषिक शब्दावली

नेति — नाक, कान, गले से सम्बन्धित

वस्ति — बड़ी आँत

नौलि — उदरगत मांसपेशियों को घुमाना

निष्कासन— निकालना

उत्कट— आधा बैठी व आधी उठी स्थिति

प्रसारण— फैलाव

एनिमा — बड़ी आँत की स्वच्छता की एक विधि

मधुमेय — मीठा अधिक लेने से होना बाया रोग, शुगर

बवासीर — बड़ी आँत का एक रोग

कोष्ठर — कोढ़ या कुष्ठन रोग

शमन — नाश करना

अजीर्ण — अपच

धृत — घी

साइनस — नासिका की एक ग्रन्थि

ब्रोकाइटिस — श्वसन संस्थान का एक रोग

अग्निसार— अग्नि अर्थात् आग, सार अर्थात् तत्व

मणिपुर — यौगिक चक्रों में से एक चक्र जिसका स्थान नाभि प्रदेश है।

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- | | |
|------------|-----------|
| 1. (क) अ | (ख) प्रथम |
| 2. (क) चार | (ख) तीसरे |
-

15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. घेरण्ड संहिता – महर्षि घेरण्ड प्रकाशक – योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार
-

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. वस्ति क्रिया के विविध प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
2. नेति क्रिया क्या है ? सूत्र नेति व जल नेति की क्रियाविधि बताये।
3. नौलि क्रिया के लाभ व सावधानियों की चर्चा कीजिए।
4. बाम नौलि व दक्षिण नौलि की क्रियाविधि बताये।
5. वस्ति क्रिया के क्याल लाभ है विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई-16 घेरण्ड संहिता में वर्णित त्राटक एवं कपालभाति की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

इकाई की संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 त्राटक

16.4 त्राटक के प्रकार

16.4.1 बर्हित्राटक

16.4.2 अन्तरंग त्राटक

16.4.3 अधोत्राटक

16.4.4 त्राटक क्रियाविधि

16.4.5 लाभ

16.4.6 सावधानियाँ

16.5 कपालभाँति

16.6 कपालभाँति के प्रकार

16.6.1 वातक्रम कपालभाँति

16.6.2 व्युत्क्रम कपालभाँति

16.6.3 शीतक्रम कपालभाँति

16.7 सार संक्षेप

16.8 शब्दावली

16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.11 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में आपने षट्कर्म के चार महत्वपूर्ण अभ्यासों (धौति, वस्ति, नेति, नौलि) का अध्ययन किया तथा इन अभ्यासों की क्रियाविधि प्रकार, लाभ व सावधानियों को समझा। प्रस्तुत इकाई में आप त्राटक व कपालभौति का अध्ययन करेंगे। ध्यान रहे कि शोधन की क्रियाये अतयन्त गोपनीय है जहाँ इनके लाभ वर्तमान में दृष्टित हो रहे हैं वही दूसरी ओर उचित मार्गदर्शन में इन अभ्यासों को अगर न करे तो व्यक्ति को नुकसान भी हो सकता है। अतः जिज्ञासु पाठक एक योग्य गुरु के संरक्षण में इन अभ्यासों को करें। वर्तमान में हर व्यक्ति त्राटक व कपालभौति से सम्बन्धित निम्न प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए उत्सुक रहता है।

- ❖ त्राटक कैसे किया जाता है ?
- ❖ त्राटक करने में क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए ?
- ❖ त्राटक के शारीरिक मानसिक व आध्यात्मिक लाभ क्या है ?
- ❖ कपालभौति कैसे की जाती है ?
- ❖ इसका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

आगे के पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जान लेने में सक्षम हो जायेंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको षट्कर्मों की अन्तिम दो क्रियाओं त्राटक व कपालभौति की जानकारी देना है। इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आपको निम्नलिखित तथ्यों का ज्ञान हो जायेगा।

- ❖ त्राटक की क्रिया कैसे की जाती है और यह कितने प्रकार की है।
- ❖ त्राटक का शरीर व मन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
- ❖ कपालभौति वस्तुतः कितने प्रकार की होती है।
- ❖ कपालभौति करने से क्या लाभ है ?

16.3 त्राटक

त्राटक शुद्धिकरण की पौंचवी प्रक्रिया है। त्राटक का अर्थ है किसी एक वस्तु या प्रतीक को लगातार देखते रहना। त्राटक का एक अर्थ है लक्ष्य को एकटक देखते हुए उसके प्रति सजग रहना। त्राटक की प्रक्रिया दिव्य नेत्रों को प्रदान करने वाली तो है ही साथ ही साथ इस प्रक्रिया के कई मानसिक व आध्यात्मिक लाभ भी हैं। व्यक्ति अपने मस्तिष्क को त्राटक के अभ्यास से प्रभावित कर सकता है। मस्तिष्क ही पूरे शरीर में स्थित तन्त्रों का नियंत्रक

है। हमारी सोच, विचारणा, संवेदना का केन्द्रबिन्दु है। मस्तिष्क में ही सृजन व रचनात्मकता का एक विचार उत्पन्न, होता है। सृजन का एक विचार सामान्य मानव को महामानव बना देता है। हमारे अन्दर अन्तरनिहित शक्तियों का जागरण त्राटक क्रिया से सम्भव होता है तथा साथ ही साथ त्राटक से मस्तिष्क के क्षेत्र को शान्त और निर्मल बनाया जा सकता है। त्राटक वास्तव में आन्तरिक सजगता की एक उच्च अवस्था है।

महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि को त्राटक की क्रियाविधि व लाभ की ओर इशारा करते हुए कहा

निमेषोन्मेषकं त्वरक्वापाल सूक्ष्मवलक्ष्या निरीक्षयेत्
पतन्ति यावदश्रूणित्राटकं प्रोच्यवते बुधै
एवमभ्यासयोगेन शाम्बी जायतेध्रुवम्
नेत्ररोगा विनश्यन्ति दिव्यतदृष्टिरु प्रजायते

घे०सं० १/५३-५४

अर्थात्— निमेष—उन्मेष को रोककर जब तक आँसू न गिरने लगे, तब तक किसी सूक्ष्म लक्ष्य की ओर टकटकी लगा कर देखते रहने को त्राटक कहते हैं। इसके अभ्यास से शाम्बी मुद्रा की प्राप्ति होती है।

16.4 त्राटक के प्रकार

महर्षि घेरण्ड ने त्राटक की प्रक्रिया में एक सूक्ष्म लक्ष्य की ओर टकटकी लगा कर देखते रहने की बात की है। योग शास्त्रों में त्राटक की तीन महत्वपूर्ण प्रक्रियाये बताई हैं। पहली प्रक्रिया का नाम बहिःत्राटक है इसमें संसार में साकार रूप में जितनी वस्तुएँ दिखाई देती हैं जैसे— सूर्य चन्द्रमा, तारे, मूर्ति, वृक्ष, आराध्य का चित्र, महायोगियों का चित्र पर त्राटक किया जाता है। दूसरी प्रक्रियायें का नाम है अन्तरंग त्राटक। इस त्राटक में साधक अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग कर आँख बन्द कर प्रतीक पर त्राटक करता है। तीसरी प्रक्रिया का नाम है अधोत्राटक इसका अभ्यास आँखों को आधा खुला और आधा बन्द कर किया जाता है। त्राटक की उपरोक्त तीनों अवस्थाओं की विस्तृत वर्णन इस प्रकार है।

16.4.1 बहिःत्राटक — बहिःत्राटक जैसा नाम से स्पष्ट है बहि अर्थात् बाहर, त्राटक अर्थात् एकटक देखना। इस प्रक्रिया में पूर्णिमा दृष्टि का प्रयोग किया जाता है संसार में हमें विविध वस्तु, प्रतीक दिखाई देते हैं साधक सबसे पहले किसी एक प्रतीक का चुनाव करता है फिर पूर्णिमा दृष्टि का प्रयोग करते हुए उस लक्ष्य को एकटक तब तक देखता है जब तक आँखों से आँसू न निकले। तदपश्चात् उस प्रतीक का आँख बन्द कर अवलोकन करता है। इस प्रक्रिया में जलती मोमबत्ती का प्रयोग भी किया जा सकता है जिसे वर्तमान में कई लोग (Candle light meditation) भी कहते हैं।

16.4.2 अन्तरंग त्राटक —अन्तरंग त्राटक के नाम से ही स्पष्ट है अन्तःरंग का मतलब है अन्तःकरण के अन्दर त्राटक का अर्थ है एकटक देखना। अर्थात् आँख बन्द कर लक्ष्य का काल्पनिक अवलोकन कर उसे देखते रहना। व्यक्ति आँख खोलकर स्थूल रूप से विविध वस्तुओं को देख सकता है पर जो वस्तुव उसने स्थूल जगत में देखी है अगर वह काल्पनिक अवलोकन करे तो अन्तः चक्षु से उसे वह वस्तुएँ आँख बन्द कर भी दिखाई देती हैं।

उदाहरणार्थ आँख बन्द करवाकर आपसे कहा जाये, आपके ईष्ट, आराध्य, गुरु, सूरज, चन्द्रमा, तारे तो आपको एक पल वह स्पष्ट दिखाई देने लगेंगे भलई आपकी अमा दृष्टि ही क्यों न हो। त्राटक की काल्पनिक अवलोकन की यह प्रक्रिया अन्तःरंग त्राटक का अन्तरत्राटक के नाम से जाती है।

16.4.3 अधोत्राटक – अधोत्राटक की इस प्रक्रिया में आँखों को आधा खुला आधा बन्द किया जाता है। योग के ग्रन्थों में इस अवस्था को प्रतिपदा दृष्टि, नासिकाग्र मुद्रा या कही इसे शाम्भवी मुद्रा भी कहा जाता है। अधोत्राटक में लक्ष्य या प्रतीक को प्रतिपदा दृष्टि से देखा जाता है अभ्यास के क्रम में बीच में आँख बन्द कर उसका काल्पनिक अवलोकन भी कर सकते हैं।

त्राटक भलई शास्त्रों में तीन प्रकार का बताया गया है पर त्राटक की सर्वसुलभ क्रियाविधि को गुरु के निर्देशानुसार निम्नानुसार किया जा सकता है।

16.4.4 त्राटक क्रियाविधि

1. ध्यान के किसी आसन (स्वस्तिक, पदमासन, सिद्धासन या सुखासन) में बैठ जाए।
2. सिर, कन्धे व रीढ़ की हड्डी एक सीध में रहे।
3. आँखों के ठीक सामने २ फिट की दूरी पर एक जलती मोमबत्ती रख दीजिए।
4. आँख बन्द कर काल्पनिक अवलोकन कर शरीर का ध्यान करें।
5. कायास्थैर्यम् का अभ्यास करे तो उचित होगा।
6. अब धीरे से आँख खोलकर मोमबत्ती की लौ को अनवरत देखते रहे।
7. लौ को तब तक देखे जब तक आँखों से आँसू न निकले।
8. ४०-५० सेकण्डो से २-३ मिनट तक लगातार लौ पर त्राटक करे।
9. तदपश्चात् आँखे बन्द कर चिदाकाश में उस लौ का अवलोकन कीजिए।
 1. उचित मार्गदर्शन में २-३-४ बार यह प्रक्रिया दोहराई जा सकती है।

16.4.5 लाभ –

1. त्राटक की क्रिया नेत्र दोषों में लाभकारी है।
2. त्राटक के अभ्यास से आँखों में जमा मल बाहर निकल जा सकता है।
3. दूरदृष्टि दोष, निकट दृष्टिदोष व मोतियाबिन्द में लाभकारी है।
4. त्राटक के आध्यात्मिक लाभ में दिव्यम दृष्टि की प्राप्ति होती है।
5. त्राटक के अभ्यास मात्र से साधक सभी अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति कर सकता है।
6. त्राटक के अभ्यास से आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है।
7. त्राटक के अभ्यास से शाम्भवी मुद्रा की भी सिद्धि प्राप्त होती है।
8. चित्त स्थिर व तनाव को दूर करता है।
9. त्राटक के अभ्यास से पीनियल ग्रन्थि पर सार्थक व सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
10. स्मरण शक्ति बढ़ाने, कल्पना शक्ति का विकास करने में त्राटक एक अचूक रसायन है।
11. आन्तरिक उत्तेजनाओं पर नियंत्रण होता है आत्मबल बढ़ता है मन शान्त होता है, तथा शक्ति प्रदान होती है।

16.4.6 सावधानियाँ

1. त्राटक का अभ्यास एक कुशल मार्गदर्शन में करना चाहिए।
2. माइग्रेन हो तो त्राटक न करें।
3. अवसाद के रोगियों को भी त्राटक नहीं कराना चाहिए।
4. आँखों में अगर चश्मा (ज्यादा पावर) का लगा है तो उचित देखरेख में करें।
5. मोतियाबिन्द का आपरेशन हुआ हो तो वह व्यक्ति भी इस अभ्यास को न करें।
6. इस अभ्यास को प्रातः काल या रात्रि के समय में ही करें।

अभ्यास प्रश्न**1. बहु विकल्पीय प्रश्न**

(क) अमा दृष्टि का मतलब है

- (अ) आँखे बन्द रखना (ब) आँखे खुली रखना
(स) अधखुली आँखे (द) दिव्य दृष्टि

(ख) घेरण्ड संहिता में त्राटक शुद्धिकरण की कौन सी अवस्था है।

- (अ) तीसरी (ब) चौथी
(स) पाँचवी (द) छठी

(ग) अधो त्राटक किया जात है।

- (अ) अभा दृष्टि में (ब) प्रतिपदा दृष्टि में
(स) पूर्णिमा दृष्टि में (द) काल्पनिक अवलोकन में

16.5 कपालभौति

कपालभाति षट्कर्मा की अन्तिम क्रिया है। कपाल का अर्थ है मस्तिष्क, व भौति का अर्थ होता है चमकाना, अर्थात् प्रकाशित करना। कपालभौति की क्रिया में मस्तिष्क का शोधन होता है। वस्तुतः कपालभाति शोधन की ही क्रिया है परन्तु कई जगह इसे प्राणायाम की क्रिया भी कहा गया है।

प्रिय विद्यार्थियों वास्तव में कपालभौति नाम सुनकर आपके मानसिक पटल पर एक ही प्रक्रिया आ रही होगी जिसे आप कई बार टी०वी०, योग शिविरों में देख चुके हैं तथा जिस प्रक्रिया में जोर से (झटके से) श्वास को बाहर निकालते हैं। परन्तु आपको स्पष्ट कर दूँ कि वास्तव में कपालभौति श्वास को जोर-जोर निकालने की प्रक्रिया मात्र नहीं है। महर्षि घेरण्ड ने कपालभौति के अन्य प्रकार भी बताये हैं अब जिज्ञासु पाठकों के मन में निम्न प्रश्नों को जानने की उत्सुकता हो रही है।

- ❖ कपालभाति षट्कर्म है या प्राणायाम
- ❖ कपालभाति के कितने प्रकार हैं।

- ❖ कपालभाति के लाभ क्या है।
- ❖ कपालभाति करने में क्या सावधानियों बरतनी चाहिए।

आगे के पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आपको स्वतः ही उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर मिल जायेगा। अभी तक आपने षट्कर्मों की पाँच प्रक्रियाओं (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक) का अध्ययन किया है। उपरोक्त प्रक्रियाओं में पंच तत्वों के माध्यम से आपने शरीर व अन्ततःकरण की शुद्धि की है। षट्कर्म की अन्तिम (कपालभाति) की प्रक्रिया में जल व वायु द्वारा शरीर का शुद्धिकरण किया जाता है विशेषतः कपालभाति की प्रक्रिया में मस्तिष्क का शोधन होता है। शोधन की क्रिया होने के कारण इसे षट्कर्म कहा जाता है।

कपालभाति की एक प्रक्रिया में श्वास-प्रश्वास को जोड़ा जाता है। चूँकि यह प्रक्रिया प्राणायाम (श्वास-प्रश्वास) पर आधारित है इसलिए इसे प्राणायाम भी कहा जाता है। शास्त्रीय मान्यता है कि प्राणायाम के माध्यम से श्वास क्रिया पर व्यक्ति नियंत्रण कर सकता है। प्राणायाम की तीन प्रक्रियाये पूरक, कुम्भक व रेचक मस्तिष्क को अनुप्राणित तो करती ही है साथ ही साथ हमारे रक्त का शोधन भी करती है। कपालभाति की प्रक्रिया में योगी झटके से श्वास का रेचक करता है इसलिए श्वास के साथ जुड़े रहने के कारण इसे प्राणायाम कहा गया है।

महर्षि घेरण्ड ने कपालभाति को परिभाषित कर कहा है।

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः

भालभाति त्रिधा कुर्यात्कफदोषं निवारयेत्

घे०सं० १/५५

अर्थात् वातक्रम कपालभाति, व्युत्क्रम कपालभाति और शीतक्रम कपालभाति के भेद से कपालभाति तीन प्रकार की होती है। इसका साधन करने से कफ से उत्पन्न दोषों का निवारण होता है।

उपरोक्त श्लोक में महर्षि घेरण्ड ने कपालभाति के प्रकारों की व्याख्या तो की है साथ ही साथ कपालभाति के लाभों की ओर इशारा करते कहा है कि “कफदोष निवारयेत्” अर्थात् कफदोषों का निवारण भी कपालभाति के अभ्यास से होना है।

16.6 कपालभाति के प्रकार

महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि को हठयोग की शिक्षा देते हुए कपालभाति के तीन प्रकार बताये हैं।

16.6.1 वातकर्म कपालभाति— वात का अर्थ है हवा, वायु कर्म का अर्थ है क्रिया। कपाल का अर्थ मस्तिष्क, भाति का अर्थ है धौकनी या प्रकाशित इस प्रक्रिया में वायु में वायु तत्व से लोहार की धौकनी के समान शीघ्रता से रेचक करते हुए मस्तिष्क को प्रकाशित करते हैं। मस्तिष्क को प्रकाशित करने से तात्पर्य है कि मस्तिष्क के एक-एक कोश को अनुप्राणित करना। अगर मस्तिष्क का एक-एक कोश अनुप्राणित हो गया तो साधक सामान्य व्यक्ति से महामानव तक बन सकता है। साधक समाधि की अवस्था तक पहुँच सकता है।

वातक्रम कपालभाति की क्रियाविधि महर्षि घेरण्ड ने इस प्रकार बताई है—

इडाया पूरयेद्वायुं रेचयेत्पिडलया पुनः

पिडलया पूरयित्वां पुनश्चडन्द्रेण रेचयेत्

पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु धारयेत्

एवमभ्यास योगेन कफ दोषं निवारयेत्

घे०सं० १/५६-५७

अर्थात् — इडा नाडी या बायी नासिका से श्वास अन्दर लेनी है और पिंगला नाडी या दाहिनी नासिका से श्वास छोड़नी है फिर पिंगला से श्वास अन्दर लेनी है और चन्द्र नाडी (बायी नासिका) से उसे बाहर निकाल देना है। पूरक और रेचक की जो क्रियायें होती हैं, उनकी गति तेज नहीं होनी चाहिए, इस क्रिया के अभ्यास से सर्दी खांसी से मुक्ति होती है।

क्रियाविधि —

1. ध्यान के किसी आसन में बैठ जाये।
2. कमर, गर्दन व रीढ़ की हड्डी को एक सीध में रखे।
3. दोनों हाथों को घुटनों पर रखें।
4. दानों नासाछिद्रों से श्वास को झटके के साथ बाहर निकाले तथा पेट को अन्दर पिचकायें।

5. तदपश्चात् विश्राम कर पुनः प्रक्रिया को दोहराये।

नोट — वातक्रम कपालभौति की यह प्रक्रिया वर्तमान में प्रचलित है। प्रारम्भ में १०-१५ राउण्ड से शुरू करते हुए गुरु के निर्देश में ४०-५० स्टोक इसके किये जा सकते हैं।

लाभ — १. पाचन संस्थान के रोगों में लाभकारी है।

२. मस्तिष्क का शोधन कर मानसिक विकारों से मुक्त करती है।

३. मोटापा को कम करता है तथा फेफड़ों की क्षमता को बढ़ती है।

४. कुण्डलिनी जागरण में लाभकारी अभ्यास है।

सावधानियाँ

१. गर्भवती महिलायें इस अभ्यास को न करें।
२. हार्निया या पेट का आपरेशन हुआ हो तो भी यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
३. उच्च रक्तचाप, हृदय रोग के रोगी इस अभ्यास को न करें।
४. अभ्यास के दौरान चक्कर आने लगे तो अभ्यास बन्द कर दें।

16.6.2 व्युत्क्रम कपालभौति — व्युत्त का अर्थ है उल्टा तथा क्रम का अर्थ है क्रिया। व्युत्क्रम कपालभौति की इस प्रक्रिया में नाक से पानी खींचकर मुँह से निकाला जाता है। महर्षि घेरण्ड व्युत्क्रम कपालभौति की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

नाभाभ्यांर जलमाकृष्यक पुनर्वत्तेणरेचयेत्

पायं पायं व्युत्तत्त्वर्मेण श्लेवष्मायदोषं निवारयेत्

घे०सं० १/५८

अर्थात् नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा जल खींचे और मुख से निकाल दे तथा मुख से जल खींचकर नासिका से निकाल दें, यह व्युत्क्रम कपालभाति कफज दोषों का निवारण करती है।

क्रियाविधि- व्युत्क्रम कपालभाति की वर्तमान प्रचलित क्रियाविधि का वर्णन इस प्रकार है-

1. सर्वप्रथम हल्का नमक डला हुआ गुनगुना पानी लें।
2. ग्लास, नेति पात्र या जग में उस पानी को डाल दें।
3. कागी गुद्रा में बैठे तथा दोनों नासाछिद्रोंको पानी में डुबा दें।
4. दोनों नासाछिद्रों से जल को अन्दर खींचें फिर श्वास छोड़ते हुए मुँह से पानी को बाहर निकाल दें।

लाभ -

1. नासिका मार्ग को स्वच्छ करने वाला अभ्यास है।
2. आज्ञा तथा बिन्दु चक्र पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
3. खेचरी मुद्रा की सिद्धि में लाभकारी है।
4. श्वसन संस्थान को स्वच्छ करता है नेत्र रोगों में लाभकारी है।

सावधानियाँ - यह एक कठिन अभ्यास है योग्य गुरु के निर्देशानुसार ही इस अभ्यास को करना चाहिए।

16.6.3 शीतक्रम कपालभाति - शीत का अर्थ है ठण्डा व क्रम का अर्थ है क्रिया चूँकि इस क्रिया से शीतलता प्रदान होती है इसलिए इसे शीतक्रम कपालभाति कहते हैं। महर्षि घेरण्ड शीतक्रम कपालभाति की प्रक्रिया तथा लाभों को बताते कहते हैं-

शीत्कार करता हुआ साधक मुख के द्वारा जल ग्रहण कर नासिका के द्वारा निकाल दें। यह क्रिया शीतक्रम कपालभाति कहलाती है। इसके द्वारा साधक का शरीर कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है और वार्धक्य या बुढ़ापा नहीं सताता। शरीर में स्वदच्छता उत्पन्न होती है तथा कफदोष का निवारण होता है।

क्रियाविधि -

1. सर्वप्रथम हल्का नमक युक्त गुनगुना पानी ले।
2. पानी को गिलास की सहायता से मुँह में डालकर पूरा मुँह भर लें।
3. लम्बी गहरी नाक से श्वास भरें।
4. पानी को गले तक घुटके तद्पश्चात् ठोड़ी को कण्ठ कूप पर मिलाये।
5. श्वास को दोनों नासाछिद्रों से बाहर निकाले तो जल स्वतः ही दोनों नासिका से बाहर निकल जायेगा।

लाभ -

1. इस क्रिया से शरीर सुन्दर तथा कान्तिमय हो जाता है।
2. नासिका मार्ग तथा श्वसन संस्थान की गन्दगी बाहर निकल जाती है।
3. शीतक्रम कपालभाति करने से वृद्धावस्था, बिमारी छू नहीं सकती है।
4. मन शान्त रहता है मानसिक रोगों से मुक्ति मिलती है।

सावधानियाँ –

1. यह एक गोपनीय क्रिया है गुरु के संरक्षण में ही इसका अभ्यास करें।
2. प्रयोग किये जाने वाला जल स्वच्छ हो तथा उसमें नमक डला हुआ हो।

16.7 सारांश

त्राटक व कपालभौति शोधन की एक महत्पूर्ण क्रियाये है। महर्षि घेरण्ड ने त्राटक व कपालभौति को शोधन क्रिया के रूप में वर्णन किया है। त्राटक का सीधे-सीधे अर्थ व्यक्ति किसी वस्तु का प्रतीक को लगातार देखने के रूप में लेता है कई लोगों की मान्यता है कि त्राटक से दूर दृष्टि आती है व्यक्ति को सम्मोहित किया जा सकता है पर वास्तव में ऐसा नहीं है। हठयोग में त्राटक क्रिया को सिद्धि प्रदायक नहीं वरन एक शुद्धिकरण की क्रिया के रूप में देखा है। त्राटक से मस्तिष्क व नेत्रों का शुद्धिकरण होता है।

कपालभौति को श्वास-प्रश्वास से होने वाली क्रिया समझकर व्यक्ति इसे प्राणायाम मानता है पर वास्तव में कपालभौति प्राणायाम न होकर एक शोधन की क्रिया है। कपालभौति से मस्तिष्क का शोधन होता है तथा प्राणमय कोश की शुद्धि होती है।

अभ्यास प्रश्न

सत्य/असत्य बताइये—

2.

- (क) घेरण्ड संहिता में कपालभौति को पाँचवे स्थान पर रखा है।
- (ख) कपालभौति के तीन भेद हैं।
- (ग) कपालभौति एक प्राणायाम है।
- (घ) त्राटक का अर्थ है कि सूक्ष्म लक्ष्य की ओर एकटक देखे रहना।
- (ङ) शीतक्रम कपालभौति में मुँह से पानी पीकर नाक से निकालते हैं।
- (च) हार्निया या पेट के आपरेशन में वातक्रम कपालभौति लाभकारी है।

16.8 शब्दावली –

विचारणा – विचार करना, चिन्तन करना, सोचना
 अन्तरनिहित – साधक के अन्दर विद्यमान
 निमेष – आँख खोलना
 उन्मेष – आँख बन्द करना
 पूर्णिमा दृष्टि – आँख खोले रखना
 अभादृष्टि – आँखे बन्द रखना
 प्रतिपदा दृष्टि – आँखों को आधा खुला रखना
 दृष्टि दोष – आँखों के विकार

कपाल — मस्तिष्क
 भौति — धौकनी, चमकाना
 पूरक — श्वास लेना
 कुम्भिक — श्वास रोकना
 रेचक — श्वास छोड़ना
 कुण्डलिनी — मूलाधार चक्र के समीप सोई हुई एक शक्ति
 नासाछिद्र — नाक के छेद
 वात — हवा
 हार्निया — आंतों का एक रोग
 काग — कौवा
 इड़ा — चन्द्र नाडी, वायों स्वर
 पिंगला — सूर्य नाडी, दायों स्वर
 व्यूत — उल्टा
 शीत — ठण्डा

16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- १ (क) अ (ख) ग (ग) ब
 २ (क) असत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य
 (ङ) सत्य (च) असत्य

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. सरस्वती निरंजनानन्द स्वामी घेरण्ड संहिता (१९६७) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुगेंर बिहार।
२. सरस्वती सत्यानन्द स्वामी आसन प्राणायाम मुद्रा बंध (१९६६) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुगेंर बिहार।
३. गौरे डॉ० एम०एम० — शरीर क्रिया विज्ञान एवं योगाभ्यास (२०११) डोलिया पुस्तक भण्डार, हरिद्वार।

16.11 निबंधात्मक प्रश्न

१. घेरण्ड संहिता के अनुसार कपालभाति की सुदीर्घ व्याख्या करे।
२. त्राटक क्रिया की विधि लाभ व सावधानियों का वर्णन कीजिए।
३. कपालभाति क्या है इसके प्रकारों की लाभ सहित व्याख्या कीजिए।